By FRANK ANTHONY, M.P. minorities.

have a specialised knowledge of these countries. Far more is likely to be gained by prominent MPs conducting a fact-finding tour fingly, as do US schators and Congressmen, will be men an kent chosen THE utility of the proposal now

to the Government's intention to support Mr. Nath Pal's Bill seeking to enlarge Article 368 of the Cons-

the country, and even in Parliament

NFORTUNATELY, adequate tention has not been paid in

than by touring in groups.
Visits by a large number of MPs
Tray impose a Lary burden on the host country which, will necessarily

the majority of a special bench of 11 judges, that Article 368 merely

Court handed down a decision,

In Golak Nath's case the Supreme

Constitution and does not confer in the matter of amendment of the prescribes certain procedural steps

pither expressly

Nath's case is supersected.

Court's majority decision titution, so that the

in Goiak Supreme

Rights.

conter

thi from the Euro-

were virtually thought that

0

he works translated

aration of text-books

iew weeks ago that

ned man of letters, rathi, who is also a annot be much less.

a University Profes-

presented an almost problem. He said that

aration was entrusted

real

ingus ord urged that the should first the should first the should by the who should of the works in fornade in the standard unprovement experiences talent for thave to bear a part of the expenses, It the object is to improve the chowledge of the MPs of the countries, concerned, then it is essential that the MPs shedd know the language of the country they are stime. Without knowing the language the MPs will hardly be in a position either to talk with the coming through an interpreter has its mon people or the leaders, Conversimitations and

to attempt a literal

essor deprecated the

or implicitly, the power to amend and derogate from the Fundamental Rights, Mr. Nath Pal's Bill seeks to supersede this decision by specifically giving Parliament in Article

368 the power to amend the Funda-

When the Bill was referred to a

Joint Committee of Parliament, the majority supported the Bill, adding

so have conducted of the Fundamental the Fundamenta

MPs abroad unless some substantial worth our spending money to send not less than one-half of the State Rights will require ratification by

better projection of India's innager abroad or a deeper understanding of

anioug Members

anguage

MIL OWD.

independent

He. how-

other countries

simple and

ramdas Daulatram, S. M. Joshi and sed the proposal to invest Parlia-

Legislatures. There were minutes of dissent by N. R. Muniswamy, Jai-If this Bill

then challen

said that this is not nege Hidayatullah observed, amending process." Most important of all of idayatullah observed.

This would be This would be wi

cause Article, 368 c.... be am on Parmament co

affirmed this position avidudes observed, "The Am and do indirectly what tended not to do directly. The majority judgier against Art. 13 (2). Parl與m

cise in political sharp prac In the face of these on the majority judges the Bill represents the power to

a power which

Parliament

cliberately

Book and is

doms is so transcendent attached to the fundamen

Bill enacted by a unantin guarante

derogate

Thom its

carry on the process of self-purification with your and greater faith so that we may grow in THINK IT OVER

- MAHATMA GANDHI

day by day.

# Flying high

Despite this depressing state of affairs, the Government of embark upon a new scheme Maharashtra has decided quirements and recognise the ernment must take a longrange view of the airline's rebe emphasised is that the Govcought is a matter best left to echnical experts. What should at the same time a part of the present fleet will have to be replaced by new aircraft, Which kinds of aircraft should be double. The airline's fleet thereore have to be enlarged, and expected passengers ormance of Indian s seems to be imand indications are do even better in the financial year. The adily. Judging from nnual report which tted to Parliament nic recession in the ne growth of passenwas very substantial ir. Despite the genet did extremely well

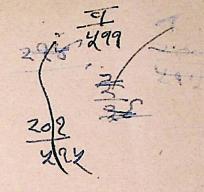
WALE OF THE PARTY There calsy person thasphysicist, Via khar, the ostudents ha By V. II ed to findin some of the last Novents these subje those now struck by neyed subject. Apart from the torrential flow of repetitive convocation oratory, suppleworthwhile step has so far been taken to bring education closer mented by an equally endless series of "expert" reports and o the practical needs of the India has become a hackrecommendations, not a singl reform DUCATIONAL

hange-ovene among the ts mother tonevitable sirer stages of edie books, espen hat enter solution to Jo husiasm nedium almost Darts standards and to provide for uniformity in the educational the Concurrent List of the Concommunity. Even such a simple Service to maintain academic policy of the country has been vival of the Indian Educational ments whose unbridled regionalism has also frustrated the but essential reform as the rerejected by the State Govern plan to bring education

is no se

nood for nonstant madernisa-

colleges do |5sary aptituor serioust. जीवन्मुक और मुक्तिमार्ग





लेखक पंड्या वैजनाथ

# जीवन्मुक्त श्रीर मुक्तिमार्ग

सी. डल्यू. लेडबीटर साहिव की अंग्रेजी पुस्तक 'मास्टर्स एएड द्राथ' के आधार पर लिखित।

लेखक

रायवहादुर पंड्या वैजनाथ

प्रकाशक

इण्डियन बुक शॉप, थिओसॉफिकल सोसायटी, वाराणसी-१

श्रीमती संदरवाई पंड्या प्रन्थमाला के लिए इंडियन दुक शॉप, वाराणसी द्वारा प्रकाशित

> द्वितीय संस्करण १८६० मूल्य १°२५

> > सुद्रक रामेश्वर पाठक तारा यन्त्रालय, वाराणसी।

# जोवन्मुक्त और मुक्तिमार्ग

#### प्रथम संस्करण की प्रस्तावना

यह पुस्तक उन जिज्ञासुओं के लिये लिखी गई है जो अंग्रेजीकी मूल पुस्तक पढ़ नहीं सकते । इसी कारण उसे इतने संस्तिप्त और सरल रूपमें लिखा है। थिओसॉफिकल समाजके सदस्योंसे प्रार्थना है कि अपने कुटुम्ब और इष्ट-मित्रोंमें इसका प्रचार कर पुण्य लाभ करें क्योंकि इसका विषय बढ़े महत्वका है।

तेखक थिओसॉफिकल पव्लिशिंग हाउस अड्यार, मद्रासका कृतज्ञ है कि उनने उदारतापूर्वक इस सारको प्रगट करनेकी आज्ञा दी है।

### द्वितीय संस्करण की भूमिका

हिन्दीमें ब्रह्मविद्या (थिष्याँसोफी) सम्बन्धी साहित्यके प्रमुख स्वष्टा रायवहादुर पंड्या वैजनाथ जीने श्रपनी स्वर्गीया धर्म-पत्नीकी स्मृतिमें कुछ धन देकर हिन्दीमें श्रपनी लिखित तथा अन्य सुन्दर पुस्तकोंके प्रकारानका श्रायोजन संभव कर दिया है। उनके सभी उपयोगी प्रंथोंके पुनः प्रकारानका प्रयत्न किया जायगा।

'जीवन्मुक्त और मुक्ति-मार्ग' का यह द्वितीय संस्करण केवल शब्दों और मात्राओं के कुछ फेरफारके साथ बड़ी शीघतासे किया जा रहा है, क्योंकि स० १६३७ ई० का पहिला संस्करण कुछ समय पहिले ही समाप्त हो चुका है और माँग बराबर आ रही है। कागज और छपाईका व्यय बढ़ जानेके कारण मूल्य बढ़ाना पड़ा है। आशा है पाठक इसका अधिकाधिक प्रचार कर हमें अन्य प्रन्थोंके पुनः प्रकाशनमें सहायता देंगे।

—प्रकाशक—

# विषय-सूची

अध्याय			पृष्ठ
9	महात्माओंका अस्तित्व	•••	8
२	महात्मात्र्योंके स्थूल शरीर	•••	4
ą	महात्मात्रोंके पास पहुँचनेका मार्ग	•••	१३
8	परीक्ष्यमाण शिष्य	•••	१८
¥	(शिष्य की) स्वीकृति		२७
Ę	दूसरी उपस्थितियाँ—मंत्र		३६
Ġ	प्रथम दीक्षा—श्वेतसंघ—अधःपतन-		88
5	कारणशरीरस्थ जीवात्मा	•••	६०
3	द्वितीय और तृतीय दीक्षाएँ		६७
20	ऊँची दीक्षाएँ		७१
28	महात्माश्रोंके कार्य		७४
१२	किरणें, ऊँचे पद और उत्सव		UE
11	। पारण, जाप पपु अरि अर्ला	,,,	The Real Property lies

#### अध्याय १

# महात्माओंका अस्तित्व

पूर्वीय देशों के लोगों में सिद्ध पुरुषों के श्रस्तित्वमें पूर्ण विश्वास है। जीव पुनर्जन्म द्वारा हर जन्ममें विकास करता हुआ आगे बढ़ता जाता है। हम अपने आसपास देखें तो हमें अपनेसे थोड़े आगे बढ़े हुए, विशेष आगे बढ़े हुए और हमसे थोड़े पिछड़े या अधिक पिछड़े जीव दिखाई पड़ेंगे। हममेंसे किसी किसीने अपनी शक्तियों को जगाया है। ये शक्तियाँ योग्य कालमें प्रत्येक मनुष्यमें जगेंगी। इनके द्वारा हमें दिखता है कि मनुष्यके विकासकी निसेनी (सीढ़ी) हमसे बहुत ऊँचेतक और बहुत नीचेतक चली गई है। इन सिद्ध पुरुषोंको हमलोग महात्मा कहते हैं। बहुतसी गवाही इन लोगोंके अस्तित्वकी मिलती है। मनुष्य जातिके ये खिले हुए फूल अपने मौसिमसे बहुत पहलेके हैं। विकासकमका नियम पृथिवीभरमें ज्याप्त है। रूप वनते हैं, मिटते हैं, सुधरते हैं; पर जीवात्मा उन सबमेंसे उन्नति करता हुआ, अपनी शक्तियोंको जगाता हुआ आगे बढ़ता जाता है। सारे जगतमें ईश्वरकी शक्ति समाई हुई है। उनकी इच्छाशक्ति विकासको आगे बढ़ा रही है।

इन सिद्धपुरुषोंका वर्णन हर धर्ममें पाया जाता है । हिन्दुओंमें श्रीकृष्ण, श्रीशङ्कराचार्य, मगवान बुद्ध आदि महापुरुषों का वर्णन है। ईसाई धर्ममें काइस्ट (मसीह) का वर्णन है। मैडेम ब्लेवेट्स्की, कर्नल ऑल्कॉट, डॉक्टर ऐनी वेसेंट, एवं लेडवीटर साहिवने कुछ महात्माओंको देखा है श्रीर वे लोग उनके विषय

में अपनी साची देते हैं। थियोसाँ फ़िकल सोसायटी के कई सदस्योंने भी दो एक महात्माओंको देखा है और इस विषयमें उन्होंने अपनी साक्षी दी है। श्रारम्भमें जब अकेखी मैडेम व्लेवेट्स्कीको दिव्यदृष्टि श्रौर दिव्यश्रुतिकी शक्तियाँ थीं तव ये महात्मागण कई वार श्रदृश्यसे दृश्य होजाते थे अर्थात योगशक्तिसे स्थूछ रूप धारण कर लेते थे। इस विषयके वहुतसे प्रमाण हैं। इमलोग प्रतिदिन निद्राकालमें अपने वासनारूप या एस्ट्रल (अुवर्लोक के) सूक्ष्म शरीर में निकल कर अपनी योग्यताके श्रतुसार न्यूनाधिक विचरते हैं। हममें से वहुत लोग इन सूक्ष्म-देहोंमें इन महात्माओंको सी देखते हैं। मैडेम व्लेवेट्स्की नेपालके एक मठमें कुछ वर्ष रही थीं जहाँ वे हमारे तीन महात्माओंको उनके स्थूल शरीरोंमें बहुधा देखा करती थीं। कोई कोई महात्मा हिमालय छोड़ कर भारतमें स्थूल शरीरमें कभी-कभी विचरते हैं। कर्नल चॉल्काटने महात्मा मरु और कुशुमि को उनके स्थूल शरीरमें देखा था। दामोदर मावलांकरने महात्मा क्कुशुमिको स्थूल शरीरमें देखा था। लेडवीटर साहिव भगवान अगस्त्रके घर एक रात्रिके लिये वुलाने पर गये थे। उनके यहाँ इन्होंने भोजन भी किया था। वे ब्राह्मण देह में जमींदार हैं। इन्हीं साहियने काउंट सेंट जरमेन अर्थात् प्रिंस राकोक्जीसे रोममें भेंट की थी। उन्होंने महात्मा मरु और कुशुमिको कई बार योगशक्तिसे वने स्थूछ रूपमें भी देखा है। वे स्वयं भी योगशक्तिसे उनके आश्रमोंको जाते थे। दिन्यदृष्टि और दूसरी योगशक्तियोंसे हमें देवों और देवगणों का भी ज्ञान होता है।

#### विकासक्रम।

खनिजवर्गका विकास होते होते वनस्पति वर्ग वना । वनस्पति से पशुवर्ग बना; उससे मनुष्यवर्ग वना और इससे भी परे दूसरे ऊँचे वर्ग हैं। महात्मात्रोंका भी कहना है कि एक समय वे भी उसी पद पर स्थित थे जिसपर चाज हमलोग खड़े हैं और इस वातको हुए वहुत अधिक समय नहीं वीता है। हमलोग भी यथाकालमें उस पद पर पहुँचेंगे। उनका कहना है कि जीवनके विकासक्रमकी सीढ़ियाँ स्वयं ईश्वर तक पहुँ चती हैं। थियाँसोफीकी शोधके अनुसार मनुष्य अपने नगसे गिरकर पशुवर्ग या वनस्पति वर्ग में अव नहीं जा सकता। पुनर्जन्म लेकर वह मनुष्य ही होगा, पशु या वनस्पति नहीं। हमारे कई कोष या शरीर हैं; उनमेंसे स्थूल और उससे ऊपर अुवर्लीकका वासना या एरट्ट शरीर, ये दो तो पूरे विकसित हो चुके हैं और किया करने योग्य हैं; पर मनोसय, विज्ञानसय और आनंद्मयकोप असी पूरे पूरे खिले नहीं हैं। स्थूछ शरीर और एस्ट्रल पर भी आत्माका पूरा अधिकार अभी नहीं हुआ है। ये शारीर कभी आत्माके विरुद्ध मनमानी कर डालते हैं। जब एस्ट्रल और मनोसय कोष, दोनों पर अन्तरात्माका पूरा अधिकार हो जायेगा तव अशुद्ध काम-संकल्पवाला नीचा मन शुद्ध होकर ऊँचे मनमें मिल जायगा। तव देहाभिमानी जीव मिटकर अकेला कारण-शरीस्थ अन्तरात्मा रह जायेगा और उसपर परमात्म-तत्वका, जिसे साधारणतः हम आत्मा कहते हैं, प्रभाव पड़ने लगेगा। जब कारणशरीरस्थ अन्तरात्मा या जीवात्मा शुद्ध होकर हमारे श्रात्मतत्वमें यानी हमारे परमात्म तत्वमें मिल जायगा तव हम महात्माके पदको या अरोष (अरोख) पदकी दीक्षाको प्राप्त होंगे। तब च्यात्मा का सचा विकास आरंभ होगा। इस विकासकी दिव्यताका पूरा पूरा ज्ञान अभी हमलोगोंको नहीं है। ऐसी विकसित आत्मा नीचेके घने कोषोंको त्याग देती है, पर जब आवश्यकता पड़े तब वह स्थूल शरीर, एस्ट्रल शरीर या मनोमयकोषको कुछ कालके लिये धारण कर लेती है। हर एक शरीर अपने अपने लोकमें कार्य कर सकता है और प्रत्येकमें हमें अलग अलग चेतना रहनी चाहिये; इन्हें हिन्दू जाप्रत, स्वप्न, सुपुप्ति, तुरीया तथा तुरीयातीत कहते हैं। महात्मा या जीवन्मुक्त पर्दको प्राप्त करके भी विकासक्रम जारी रहता है। जीवात्माको इससे आगे बढ़ने के लिये सात भिन्न भिन्न मार्ग हैं। इस जगतकी आन्तरिक व्यवस्था और सत्ता एक "श्वेतसंघ" के हाथमें है जिसमें हमारे दो महात्मा भा शामिल हैं। इवेतसंघके सदस्य संसारमें विखरे हए हैं: एक जगह किसी मठमें नहीं रहते । ये देववर्गके भी नहीं हैं, न सभी भारतीय देह ही धारण किये हैं और न सब हिमालय में ही रहते हैं। इस संघके सब ऊँचे सदस्य एक-दूसरेसे मन द्वारा मिलते रहते हैं। इनमें से कुछ अपने कर्तव्यभावसे शिष्योंको प्रहण करने और उन्हें सिखानेका भी कार्य करते हैं। पर इनकी संख्या बहुत थोड़ी है। महात्मात्र्योंको बहुतसी और आश्चर्यजनक शक्तियाँ भी रहती हैं। उनका दृष्टिकोण हमसे बिल्क्सल भिन्न है। उनका देहात्मभाव नष्ट हो चुका है; वे केवल दूसरोंके कल्याणार्थ जीते हैं। वे पूर्णताको प्राप्त हो चुके हैं। उनका उद्देश्य विकासको ईश्वरकी इच्छानुसार चलानेका है। यही उनका हेतु है। उनमें सब गुण बरावर विकसित हैं।

क्ष सारी प्रकृति सात विभागों में विभक्त है। जैसे सूर्यका प्रकाश सात रंगका है, प्रकृतिके स्वभावतः सात विभाग हैं, सात किरणें हैं; वैसे ही मनुष्यवर्गके भी सात विभाग हैं, सात किरणें हैं। हर एक किरणके अधिपति एक एक महात्मा नियुक्त हैं जो अपनी किरणवाले शिष्यों का भार लेते हैं। महात्मापदसे नीचेका कोई भी साधक नये शिष्य का पूरा भार नहीं ले सकता। पुराने शिष्य नये शिष्यों को सहायता दे सकते हैं। वहुत अंशमें शिष्यत्वके लिये लोगोंका चुनना इन पुराने शिष्योंके हाथमें छोड़ दिया गया है।

#### अध्याय २

# महात्मात्रोंके स्थूल शरीर

उनका रूपरंग-महात्मात्रोंको पहिचाननेके लिये उनके स्थूल शरीरोंमें कोई विशेषता नहीं रहती। वे सदैव प्रभावशाली, उदार, सुशील, सम्मान-योग्य, पवित्र और शांत दीख पड़ेंगे। वे शक्तिशाली पर मितभाषी होते हैं। उनका भाषण सहायता देने, चेतावनी देने या अन्य किसी विशेष उद्देश्यसे ही होता है। वे अत्यन्त द्यालु और विनोद्प्रिय होते हैं पर उनके विनोद्में किसीका चित्त नहीं दुखता। उसमें द्याका भाव रहता है और उसका हेतु जीवनकी अङ्चनोंको सरल बनाना ही होता है। वे प्रायः सभी सुन्दर आकृतिके रहते हैं। उनके बुरे प्रारव्ध-कर्म तो कभीके निपट गये हैं। वे स्वास्थ्यके नियमों का पूर्ण पालन करते हैं और उन्हें कभी भी किसी वातकी चिंता नहीं होती। यदि ये नया जन्म लें तो इनका नया शरीर भी बहुत अंशमें पुराने शरीर सरीखा ही रहेगा, क्योंकि उसे बदलनेके लिये इनके पास कोई प्रारव्य कर्म नहीं है। महात्माको पहचान सकनेके लिये उनका कारणशरीर देखना चाहिये। वह बहुत वड़ा होगा और उसमें रंगीन समकेन्द्रिक गोले होंगे।

एक आश्रम — तिब्बतमें एक स्थानपर महात्मा मरु,
महात्मा कुथुमि और महात्मा ज्वालकुल रहते हैं। एक गहरे
तंग खडुके दोनों तरफ महात्मा मरु और महात्मा कुथुमिके
आश्रम हैं। खडुमें नीचे नाला बहता है जिसके ऊपर एक पुल
है जहाँसे रास्ता दोनों घरोंको जाता है। पुलके निकट ही
एक द्वार सा है जिसके भीतर बड़ी और चौड़ी गुफाएँ

बड़े बड़े कमरोंके समान हैं। इनमें एक गुप्त अजायबघर है जिसके निरीक्षक श्वेतसंघकी श्रोरसे महात्मा कुथुमि हैं। जगत में जो जो मनुष्य-जातियाँ हो गई हैं उनके जीवितसे नमूने इसमें रखे हैं। हर एक प्रलयके पीछे पृथ्वीकी सतह कैसी बदल गई इसके भी नीचाई ऊँचाई बतानेवाले नक्शे यहाँ हैं। मनुष्य-जातियाँ कहाँसे निकल कर किधर भटकीं, जगतके भिन्न भिन्न धर्मींका प्रभाव कहाँ कहाँ कैसा कैसा पड़ा, इनके भी नकशे हैं। मनुष्य-जाति के वड़े वड़े नेताओं और बहुत पुराने कालके धर्मसंस्थापकोंकी मृर्तियाँ भी हैं। बहुत पुराने युगोंके बने श्रमूल्य प्रंथ भी यहाँ रखे हैं। यहाँ भगवान गौतमबुद्धके अपने हाथका लिखा एक प्रंथ है, एक प्रंथ भगवान क्राइस्टके हाथका लिखा है। यहाँ ज्यान (Dzyan) की असल प्रति रखी है जिसका वर्णन मैडेम व्लेवेट्स्की अपनी पुस्तक "सीक्रेट डॉक्ट्न"में करती . हैं। दूसरे गोलोंकी लिपियाँ भी यहाँ हैं। वनस्पतियों और पशुत्रोंके रूप भी यहाँ चित्रित हैं जिनमें से छुछका प्रमाण तो चट्टानके भीतरके जीवोंके वचे निशानों (fossils) से प्रकट होता है श्रीर कुछको विज्ञान अभी जानता ही नहीं है। सव मुर्तियों और नम्नोंमें रंग असलके समान ही दिया गया है। ये नमूने पीछेसे संप्रह नहीं किये गये पर विकासका इतिहास सममतेके लिये अपने अपने समयसे ही जमा किये गये थे। भिन्न भिन्न सभ्यतात्रों द्वारा आविष्कृत यन्त्रोंके भी नमूने यहाँ रखे हैं।

इन वड़े-बड़े कमरोंमें प्रवेश करनेके पूर्वके छोटे कमरेमें महात्मा मरु और कुशुमिके परीक्ष्यमाण शिष्योंकी मूर्तियाँ भी दीवालसे लगी हुई रखी हैं। पर ये स्थूल आखोंको न दिखेंगी क्योंकि इनकी सबसे स्थूल प्रकृति ईथर है। इस नालेके एक ओर एक बड़ा तालाब भी है।

महात्मा कुशुमिकं घरमें तीन कमरे हैं। घर उत्तरमुख है।
पश्चिमकी ओरके आधे घरमें एक कमरा प्रायः ५० फुट लम्बा
और ३० फुट चौड़ा है; वाकीके आधे घरमें दो कमरे हैं। इनमें
उत्तर-पूर्वका कमरा सोनेके लिये और दिल्ला-पूर्वका कमरा
पुस्तकालयके काममें आता है। घरके तीन ओर चौड़ा वरामदा
है। वड़े कमरेमें खिड़िक्याँ वहुत हैं। उसमें एक तापनेके लिए
चिमनी भी हैं जिससे तीनों कमरे गरम होते हैं। इस कमरेमें
मेज, सोफा तथा एक ऑर्गन वाजा भी है। इत प्रायः २०
फुट ऊँची और सुन्दर है। पुस्तकालयमें हजारों पुस्तकें हैं।
महात्मा कुशुमि अंग्रेजीके तो पूर्ण ज्ञाता हैं ही, पर वे फ्रेंच और
जर्मन भाषा भी जानते हैं। इस पुस्तकालयमें उनके एक शिष्य
द्वारा भेंट किया हुआ एक टाइपराइटर भी है।

इनके आश्रममें एक देवी हैं जिन्हें ये वहिन कहते हैं और जो शिष्या जान पड़ती हैं। ये वहिन इनसे वहुत अधिक बुड़ित दिखती हैं। ये इनके घरकी और नौकरोंकी निगरानी करती हैं। एक दंपित इनके बहुत पुराने नौकर हैं पर उन्हें अपने स्वामीका सचा माहात्म्य बिल्कुल मालूम नहीं है। गुरुदेवके पास कुछ जमीन और एक बड़ा बगीचा भी है। नौकर भी खेती करनेको हैं। बगीचेमें से एक छोटीसी जलधारा बहती है जिसका वहाँ एक छोटा जलप्रपात भी है। यहाँ बैठ कर वे अपने शिष्योंको विचार और आशीर्वाद मेजते हैं। कभी-कभी वे अपने बड़े कमरेकी आराम कुर्सी में भी बैठते हैं। तब नौकर लोग उन्हें समाधिमें समम कर उठाते नहीं हैं। गुरुदेव कुछ संगीत भी बनाते हैं और कई विषयों पर लेख भी लिखते हैं। विज्ञानकी उन्नतिमें भी उन्हें बहुत रुचि हैं।

कभी-कभी महात्मा कुशुमि बड़े दुम्मैत घोड़े पर चढ़ते हैं

श्रीर यदि दोनों का काम एक ही स्थान पर हो तो महात्मा मरु भी इनके साथ जाते हैं श्रीर वे एक बड़े सफेद घोड़े पर चढ़ते हैं। कभी-कभी वे अपने कमरे का बाजा भी बजाते हैं। यह उनकी निगरानीमें तिब्बतमें बना था। उस बाजेके साथ गन्धर्वोंका संबंध जोड़ दिया गया है। उसके बजने पर ये गन्धर्व भी उसमें सहायता देते हैं जिससे उससे दिव्य संगीत निकलता है।

प्रतिदिन प्रातःकाल कुछ लोग—शिष्य नहीं, पर अनुयायी—आकर उनके वरामदेमें या वाहर बैठते हैं। कभी कभी गुरुदेव उन्हें छोटासा भाषण भी देते हैं पर बहुधा वे अपने काममें लगे रहते हैं और इन लोगों को देखकर मुस्कुरा देते हैं। गुरुदेव बहुधा अपने कमरेमें मेज पर मोजन करते हैं पर कभी-कभी वरामदेमें इन लोगोंके बीचमें बैठकर भी खाते हैं। हमने इन्हें कभी मध्यान्होप्रांत भोजन करते नहीं देखा है। यह भी संभव है कि वे रोज आहार न करते हों। हमने उन्हें छोटी गोल मीठी रोटियां खाते देखा है। इन्हें उनकी विहन बना देती हैं। वे दाल भात भी खाते हैं। वे खेत बस्न पहिनते हैं पर सिर खुला रहता है। महात्मा मरु अकसर दुपट्टा बांधते हैं।

महात्मा मरुका घर नालेके उस पार, बहुत नीचेमें दो खंडोंका और कांचदार बरामदेवाला, गुफाओंके द्वारके पास ही है। उनकी भी दिनचर्या प्रायः इन्हीं की-सी है।

महात्मा कुथुमिके घरके पास थोड़ी दूर ऊँचे पर महात्मा ज्वालकुछकी कुटिया है जो उन्होंने अपने हाथसे अपने गुरुदेवके निकट रहनेके छिए बना ली थी; तब ये शिष्य ही थे और महात्मा पदको नहीं पहुँचे थे। भगवान वैवस्वतमनु पाँचवी मनुष्य-जातिके जन्मदाता और अधिष्ठाता, महर्षियोंमें सबसे ऊँचे, छः फुट आठ इख्र लंबे, बड़ी सुन्दर आकृतिके हैं। उनकी पैनी नाक, शक्तिशाली सुख, पूर्ण और लंबी दाढ़ी, सिंहके समान सुन्दर सिर और भूरी सुवर्णमय प्रकाशवाली आँखें हैं। ये हिमालयमें भगवान मैत्रेय के आश्रमके निकट ही रहते हैं।

महात्मा मरु भी इन्हींके समान शरीरवाले हैं। ये छठवीं मूलजातिके मनु होंगे। इनका देह राजपूत राज्यकुलका है। इनकी काली दाढ़ी दो भागोंमें विभक्त है। सिरके छंवे वाल कंघे पर गिरते हैं और उनकी काली पैनी आँखें शक्तिसे भरी हुई हैं। ये साढ़े छः फुट ऊँचे हैं। इनका वर्तन सिपाहियाना है। ये छोटे संक्षिप्त वाक्य बोळते हैं। इनके सामने जानेसे छत्यन्त शक्तिका और आज्ञा देनेवाले महात्माका भान होता है जिससे मनमें उनके प्रति गंभीर आद्रका भाव उत्पन्न होता है। एस० रामस्वामी अय्यरने इन्हें स्थूल शरीरमें देखा था।

चौथी मूळजाति के मनु भगवान चाक्षुप भी ऐसी ही राजोचित मूर्तिधारी हैं। इनका देह चीन देशका है और ये ऊँची जातिके हैं। ये अकसर लंबी जरीकी पोशाक पहिनते हैं। इनका चेहरा चीनी लोगोंके समान है और गाळकी हिंबुयाँ ऊँची उठी हुई हैं।

वोधिसत्व जगद्गुरु भगवान मैत्रेय और उनके सहायक महात्मा कुशुमिमें सर्वव्यापी विश्वप्रेम विशेष रूपसे हैं। भगवान मैत्रेयका शरीर केल्टिक जातिका है। चेहरा बहुत सुन्दर, शक्तिवान पर अत्यन्त कोमल है। उनके रक्त सुवर्णसे केश कंधों पर लटकते हैं। दाढ़ी नुकीली है। नील वर्णकी दो

आँखें दो तारों के समान हैं और अखंड शांतिके जलसे भरे दो छोटे जलाशयों का भान कराती हैं। इनके आसपास इतना प्रकाश छाया रहता है कि उस पर आँख ठहर नहीं सकती। इसमें साथ-साथ प्रेमप्रभुके शरीरसे निकलती आश्चर्यजनक गुलाबी रंगकी प्रभा भी मिली रहती है। इनका घर हिमालयमें है। उसमें बहुत खिड़िकयाँ हैं। घरके नीचे बगीचा और बनाई हुई सम जमीनें और उनके बहुत नीचे भारतवर्षके विशाल भैदान हैं। संध्याको ये कभी-कभी अपने बागमें घूमते हैं तब इनकी इवेत पोशाकमें जरीका किनारा लगा रहता है। ये ही काइस्ट हुए थे। इनका प्रेम बड़ा मधुर है।

महात्मा कुशुमिका शरीर काश्मीरी ब्राह्मण्का है; साधारण् अंग्रेज सरीखा गोरा है। उनके बाल लम्बे और आँखें नीली एवं प्रेम तथा आनन्द से पूर्ण हैं। .बाल और दाढ़ीका रंग हल्का लाल है जो सूर्यके प्रकाशमें सुवर्णमय भासता है। नाक नोकदार, आँखें बड़ी और नीले जल भरी सी हैं। ये भी जगत्के शिक्षक और पुरोहित कार्यके निरीक्षक हैं। ये अठवीं मूलजातिके बोधिसत्व बनेंगे।

महाचौहान एक बड़े ज्यवस्था-कुशल राजमन्त्री सरीखे हैं; पर उनमें भी बहुतसे गुण सैनिकके हैं। इनका शरीर भारतवर्ष का है। ये दुवले, ऊँचे, नुकीली नाक और पतले चेहरेके हैं। इनकी आँखें गहरी और वेध करनेवाली हैं। ये दाढ़ी मूँछ कुछ नहीं रखते। बोली सैनिक सरीखी है। ये हिन्दुस्तानी पोशाक पहिनते और सिर पर फेंटा बाँधते हैं।

काउंट सेंट जरमेन की देह यूरपकी और ऊँचे कुलकी है। रंग कुछ कम गोरा, आगेके वाल पीछेको मुद्दे हुए और सिर के वीचमें दोनों वाजू मोड़े हुए, छोटे हैं। ये गहरे रंगकी जरीवाली पोशाक पहिनते हैं; अक्सर एक लाल फीजी कोट भी पहिनते हैं।

महात्मा सिरेपिसने ग्रीसदेशमें जन्म लिया था, ऊँचे गोरे रंगके हैं। इनका कार्य मिश्र देशमें होता है। चेहरा एक तपस्वीका है।

वेनिशियन चौहान छः फुट पाँच इख्र ऊँचे, कदाचित् रवेत संघमें सबसे सुन्दर श्राकृतिके हैं। दाढ़ी लंबी, बाल सुनहले श्रीर आँखें नीली हैं। इनका जन्म इटलीके वेनिस नगरमें हुआ था। महात्मा हिलेरियन श्रीसमें जन्मे, सुन्दर आकृतिके हैं।

महात्मा जीसस (ईसा) का शरीर कुछ साँवलासा, सिरिया देशका है। अरव लोगोंके समान काली आँखें और काली दाढ़ी है। ये सफेद कपड़े और सफेद पगड़ी पहिनते हैं। सब भक्तोंके ये सहायक हैं। ये अरवके वायव्यकी एमें लेवेनान पहाड़में रहते हैं।

भगवान अग्रस्य दिनण भारतमें जमींदार हैं। लेडवीटर साहवको उनके यहाँ एक वार जानेका और ठहरनेका सौभाग्य हुआ था। अकेले इन्हींके वालोंमें कुछ सफेद वाल भी दिखाई देते हैं। महात्मा ज्वालकुल इस अशेष पदको थोड़े वर्ष पूर्व ही आप्त हुए हैं। उनका चेहरा विव्यत देशका, गालकी हिंडुयाँ उठी हुई, और मुख रूखासा है। इसी जन्ममें इस पदको आप्त होनेके कारण इनके चेहरेमें अभी वैसी सुन्दरता नहीं आई है। ये अब बुड्ढे हो चले हैं।

जगतका कार्य करनेके लिये इन लोगोंको ये शरीर पूर्ण स्वस्थ तथा अन्तरात्माके सर्वथा अनुकूल बनाये रखना पड़ता है। यह कार्य कुछ सरल नहीं है। सुसंरक्षित वातावरण्में रखनेसे ये शरीर बहुत दिन तक टिकते हैं और देखनेमें कम उमरके लगते हैं। महात्मा मरु अभी ३५ या ४० वर्षके दिखते हैं पर कहते हैं कि उनकी आयु इससे चारपाँच गुनी अधिक होगी। मैडेम क्लेवेट्स्कीका कहना था कि जैसे उन्होंने इन्हें अपने बचपनमें देखा था ठीक वैसेही ये उनके बुढ़ापेमें दिखते थे। महात्मा कुथुमि भी उसी वयके दिखते हैं पर उन्होंने यूरपके किसी विश्वविद्यालयमें १८५० ई० के पूर्व डिग्री प्राप्त की थी जिसके अनुसार उनकी आयु अब १०० वर्षसे अधिक होनी चाहिये। इन लोगोंकी आयु कहाँ तक वढ़ सकती है, यह मालूम नहीं है।

ऐसा शरीर बहुत नाजुक होता है और संसारके घर्षणमें रहकर शीघ्र ही घिस जायगा और उनको बहुत कष्ट भी मिलेगा, इसिलये इन महात्माओं को एकान्तमें रहना पड़ता है। किसी शिष्यके शरीरमें परकायप्रवेश करलेनेसे गुरुदेव को बहुत सुविधा होती है। गुरुदेव उस शरीरमें थोड़े या अधिक कालके लिए प्रवेश करके अपना कार्य पूर्ण करते हैं। भगवान युद्धने अपने अंतिम जन्ममें इस प्रकार अपने एक शिष्य का शरीर लिया और काइस्टने ईसाके शरीरमें अंतिम तीन वर्षतक रह कर अपना कार्य किया। यदि किसी शिष्यका शुद्ध और योग्य शरीर मिल जाय तो महात्मा पुनर्जन्म लेनेके बदले उसमें प्रवेश कर १४-२० वर्षके समयको वेकाम खोनेसे वचा लेते हैं।

DE ADE T SHOW BY SHOWS

#### अध्याय ३

# महात्मा ओंके पास पहुँचनेका मार्ग

जगतमें महात्मात्रोंका संघ-श्वेतसंघ-सदैव वना रहा है। युगोंसे इनके पास ज्ञान भी संचित रहा है जिसकी ये नित्य परीक्षा करते रहते हैं। उस ज्ञानका एक वहुत छोटा अंश उन्होंने जगतके कल्याणार्थ थियाँसोफी या ब्रह्मविद्याके नामसे प्रकट किया है। जब इस इस ज्ञानके अनुसार अपना जीवन बना होंगे तव श्वेतसंघ जगत्में श्रीर श्रधिक ज्ञान प्रगट करेगा। जो लोग अभी भी उनकी प्राप्तिके मार्गमें प्रवेश करना चाहते हैं उनके लिये मार्ग खुला है। पर इनमें जरा भी पक्षपात नहीं है। यदि किसी मनुष्यको सिखानेसे वह जगकी अच्छी सेवा करेगा तो वे उसके लिये विशेष कष्ट उठायेंगे। वे हर कार्यको जगतकी सेवाके दृष्टिकोण्से देखते हैं। वे कार्यमें बहुत मग्न हैं। लाखों मनुष्योंके कारण शरीरों पर या बुद्धि लोकके कोषों पर ये नित्य प्रभाव डालकर उन्हें ऊँचा उठाते हैं। ऐसे महात्माओं को ऐसे प्रभावशाळी कामोंसे मन खींचकर कभी कभी अपने शिष्य पर ध्यान देना पड़ता है। इसिलये जब तक शिष्य इस ध्यान के बदलेमें भविष्यमें जगकी काफी सेवा करने योग्य न हो तवतक महात्मा उसको प्रहण न कर सकेंगे।

मनुष्यजातिका विकास बहुत धीरे धीरे होता है पर वह सदैव जारी रहता है। यह काल ऐसा है कि इस समय उन्नति में शीघ्रता करना सरल है। हजारों वर्षमें जो उन्नति होती सो इस समय कुछ जन्मोंमें ही हो सकती है। ऐसा प्रयत्न थियोसॉफिकल समाजके अंतरंग स्कूलके बहुतसे सदस्य इस समय कर रहे हैं। वहाँ यह बताया जाता है कि इस ऊँचे कार्यके लिये किस प्रकार शीघ तैयार हो सकते हैं। पाठकके मनमें यह प्रश्न उठेगा कि हम इसके लिये क्या करें। इसका सरल उत्तर यह है कि मनुष्यके विकासमें सहायता कीजिये। गुरुदेवों के सहायताके कार्यमें मदद दीजिये। अभी आपसे जो कुछ वन सकता हो उतना ही करिये और आपमें चरित्रकी शक्ति आने पर तुरन्त ही ऊँचे कार्यमें खींच लिये जायेंगे। हमें अपना कार्य खुद ही हूँ द निकालना चाहिये। किसीके कार्य बताने की बाट न देखनी चाहिये। थियोसॉफिकल समाजकी सेवा करना उन महात्माओंकी भी सेवा है। विवाहित और अविवाहित दोनों ही अपने अपने चेत्रमें आवश्यक कार्य कर सकते हैं । अ

रवेत-संघमें दाखिल होनेके लिये साधनचतुष्टय की आवश्यकता है जिसका वर्णन तत्ववोध, अपरोक्तानुभूति और वेदान्तसारादि अंथोंमें अच्छी तरहसे दिया है। श्री कृष्णमूर्तिके "श्री गुरुचरणोंमें" (At the Feet of the Master) में भी इसकी बहुत सुन्दर व्यख्या है। इस पुस्तकमें 'मुमुक्षत्व' साधन के बदले 'प्रेम' रखा गया है। पूर्ण मोक्ष तो ईश्वरसे एकत्व प्राप्त

श्रीएक कवितामें कहा है कि मन्दिरके तीन द्वार हैं। ज्ञान, कर्म और प्रार्थना; किसी भी द्वारसे प्रवेश कर सकते हैं। सब शक्तियों को बढ़ाना श्रेयस्कर है। सब निःस्वार्थ, परोपकारी काम गुरुदेव का काम है। हमें विशेष जिम्मेदारी प्रहण करने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिये। जब गुरुदेव के नाम पर- और उनके लिये ममता त्यागकर निष्काम भावसे किये जाते हैं तब वे भी गुरुदेव की सेवा वन जाते हैं। गुरुदेवके कार्य में छोटा बढ़ा फुछ नहीं है। सभी कार्यों का महत्व है। अपना काम स्वयं द्वंद लेना चाहिये। कोई वतावे यह वाट न देखनी चाहिये।

करनेसे होता है और ईश्वर प्रेमरूप है। इसलिये पूर्णतया प्रेममय हुए विना मोच नहीं मिल सकता। "मार्ग प्रकाशिनी", "मुमुक्षु का मार्ग", "सारशब्द" आदि पुस्तकोंसे भी इस विषयको सममनेमें सहायता मिलती है। इनको पढ़कर जिज्ञासुको अपना चरित्र सुधारना चाहिये और परसेवाका कार्य हाथमें लेना चाहिये। गुरुदेव हर एक कार्यको मनुष्यके कल्याणकी दृष्टिसे देखते हैं। वैसा ही दृष्टिकोण हमारा भी होना चाहिये। जिससे विकासमें सहायता मिले वही कार्य धर्म, वही खच्छा और प्राह्म है; जिससे विकासमें बाधा पड़े वही पाप, वही बुरा और त्याज्य है। इस नियमसे हम तुरन्त जान सकते हैं कि किस कार्यमें सहायता देना और किस कार्यको रोकना चाहिये।

जव कोई मनुष्य थियोसॉफ्कल समाजका सदस्य बनता है तब एक क्षणके छिये इन गुरुदेवॉकी दृष्टि उस पर स्थिर होती है। बहुतोंको तो वे, उन जीवॉके पूर्व संस्कारके कारण, इस समाजमें प्रवेश करनेका योग ला देते हैं। इसके अंतरक समाजमें प्रवेश करने पर उनसे एक सम्बन्ध वँध जाता है, आरम्भमें उस अंतरक समाजके वाह्य अधिष्ठातासे और उनके द्वारा गुरुदेवसे। यह श्रृङ्खला आगे बढ़नेसे विशेष बलवती होती जाती है। वाह्य अधिष्ठाता अपने गुरुसे एक हैं, इस प्रकार इस अन्तरक विभागका सदस्य भी उनसे एक हो जाता है। सारा खेतसंघ एक है और प्रारम्धि साधकका जिनसे संबंध होगा उन्हींका शिष्य वह आगे जाकर बन जायगा। गुरुदेव अन्तरक समाजके सदस्योंसे भी कभी कभी जगसेवाका काम ले लेते हैं पर यह कार्य वे अपने शिष्योंसे बहुत अधिक लेते हैं। जिज्ञासुको यह चिंता न होनी चाहिये कि गुरुदेवका ध्यान हमारी ओर कैसे खिंचे। अन्वेरेमें जैसे दीर्घ प्रकार छिप नहीं

सकता ऐसे ही साधनचतुष्टयवाला शिष्य भी गुरुदेवोंको दीप्तमान दिखता है और उनका ध्यान आकिषत करता है। इसिलये हमारा कर्तव्य यही है कि अपने चरित्रको साधनचतुष्टययुक्त वनावें और थियोसॉफिकल साहित्यके अध्ययन द्वारा तथा दूसरोंकी निष्काम सेवा द्वारा अपनेको शिष्य बनने योग्य बनावें। पर गुरुदेव जितना ध्यान हम पर देंगे उससे अधिक जगसेवा जब तक हमसे न हो सकेगी तब तक गुरुदेव नियमानुसार हमें अपना शिष्य नहीं बना सकते। यदि कभी नये शिष्यमें दोष दिखाई पड़े तो हमें इसका निश्चय रहना चाहिये कि भीतर कुळ अच्छे गुण छिपे हैं जिनके कारण ऊपर दिख पड़ते दोष विशेष महत्त्वके नहीं हैं।

हिन्दूशास्त्रोंमें कहा है कि गुरु अपने शिष्यके किये कर्मों का उत्तरदाई बन जाता है। जिस क्षण्से गुरु शिष्यमें कोई नई शक्ति जगाता है, नया ज्ञान देता है, उसी ज्ञण्से उस शिष्य के अध्यात्म-विद्या सम्बन्धी पापोंके लिये वह गुरु जवाबदार हो जाता है जब तक कि शिष्य स्वयं महात्मा पदको प्राप्त न हो लेवे। प्रतिदिन ध्यान करनेसे शिष्यकी विचारशक्ति वढ़ जाती है। यदि वह किसीके विषयमें वुरे विचार मनमें रखेगा तो उससे उस दूसरेका अहित होगा; कभी इतना अहित हो सकता है जिससे उसका सारा जीवन ही विगड़ जाय; शिष्यके वुरे विचारोंसे वह व्यक्ति वुरा न होने पर भी वुरा बन जाय, पापमें पड़ जाय। कभी विचारका रूपान्तर कर देनेसे उनका हित होगा। जैसे कोई व्यक्ति शरावी है; यदि शिष्य विचारे कि उस शराबीका यह कैसा वुरा काम है, अपने स्त्री और वचोंके प्रति उसका यह कैसा अन्याय है तो यह विचार राखत नहीं है पर उस व्यक्तिको सहायक भी नहीं है। यदि उसके बदले शिष्य

यह विचारे कि "इसका आत्मा जगे और इस दुर्वलताको जीते; इसमें यह दृढ़ भाव आवे कि मैं इस दुर्वलताको जीत सकता हूँ श्रीर जीत लूँगा" तो इससे उस व्यक्तिको सहायता मिलेगी।

गुरुदेवका ध्यान करनेसे उनसे सम्बंध वँध जाता है। दिव्यदृष्टिवालेको यह प्रकाशकी रेखाके रूपमें दिखता है। ऐसी रेखा गुरुदेवकी चेतनामें प्रभाव उत्पन्न करती है ख्रीर वे उसके उत्तरमें आशीर्वाद भेजते हैं, जो ध्यानके पश्चात् भी बहुत देर तक आता रहता है। ऐसा प्रतिदिनका और नियुक्त समयका ध्यान वड़े महत्त्वका है। उसे प्रतिदिन उसी समय पर करना चाहिये। स्थूल फल न भी दिख पड़े तो भी उसे बरावर करते रहना चाहिये। आरम्भमें सदैव यह देखते रहना चाहिये कि ध्यानका क्या स्थूल प्रभाव शरीर पर पड़ता है। ठीक रीति से ध्यान करनेसे सिर दुई या कोई दूसरा दुई नहीं होना चाहिये। ध्यानसे विचार और एकाप्रता पर जोर पड़ता है। पर इसे ऐसी सावधानीसे करना चाहिये कि अति न हो और न कोई दुरा परिणाम उत्पन्न हो। कभी कभी कोई वहुत गहरा ध्यान दीर्घ काल तक करता है जिससे शरीरको दुःख होता है। यह ठीक नहीं है। मस्तिष्कको थोड़ा अधिक दबा देना तो सरछ है पर उसके नुकसानको मिटाना वड़ा कठिन हो जाता है। कभी कभी थोड़े दिनोंमें ऐसी कुदशा उत्पन्न कर ली जा सकती है जिसे सुधारनेमें कई वर्ष लग जायेंगे। इसिंख्ये जब कभी ध्यान करनेसे किसी प्रकारका बुरा परिणाम दीख पड़े तो ध्यानको कुछ दिनोंके लिये रोककर आरोग्यता सुधारनी चाहिये और बन सके तो जो इन वातोंको सममता हो, उसकी सलाह लेनी चाहिये।

उदासी न आने पावे; उदासीसे गुरुदेवको सहायता करना कठिन हो जाता है। उदासीसे यह भी सिद्ध होता है कि हम अपना चिन्तन ज्यादा करते हैं और गुरुदेवका कम । अहंकार, चिड़चिड़ापन, दूसरोंकी अन्तरंग उन्नतिके विषयमें छुत्हल, चुरा मानलेनेकी प्रवृत्ति, ये दुर्गुण शिष्य बननेमें वाधा डालते हैं। सदैव अपने विषयमें सोचते रहना यह भी वाधाकारक है। हम अपनेको गुरुदेवको पूर्णतया समर्पण नहीं कर देते; छुछ थोड़ा-सा पीछे रख लेते हैं। यह भूछ है। हमें अपनेको पूर्णतया अपेण कर देना चाहिये। शिष्यमें अद्धा और दृढ़ इच्छाशक्तिकी काफी मात्रा होनी चाहिये। जब तक उसका यह दृढ़ निश्चय नहीं है कि मैं इस कार्यको साध सकता हूँ और जितने जल्दी हो सके उसे अवस्य साध लूँगा, तब तक वह सिद्धिको प्राप्त न होगा।

-: 0:-

#### अध्याय ४

## परीक्ष्यमागा शिष्य

पूर्ववर्णित उत्साही ब्रह्मविद्याके च्रध्ययन और आत्मसमर्पण करनेवालों में से गुरुदेवोंने वहुतसे प्रसंगों पर अपने शिष्य बनाये हैं। पर वे इस बातमें बहुत सावधान रहते हैं कि योग्य पात्र ही शिष्य बने। परीक्ष्यमाण शिष्य पदका यही हेतु है।

जब हमारी काफ़ी उन्नित और शुद्धि हो चुकेगी तो गुरुदेव हमें अपना परीक्ष्यमाण ग्रिब्य वनावेंगे अर्थात् कुछ काल तक हमारी परीक्षा करते रहेंगे और देखेंगे कि हम संसारी अड़चनोंमें कैसा व्यवहार करते हैं। ऐसे प्रसंग पर गुरुदेव किसी अपने योग्य शिष्यको आदेश करते हैं कि अमुक व्यक्तिको हमारे पास उसके एस्ट्रल या वासना शरीरमें ले आओ । आने पर कोई किया नहीं होती पर गुरुदेव उसे कुछ उपदेश देते हैं और वताते हैं कि उसे भविष्यमें क्या साधना करनी चाहिये। वे अपनी कृपापूर्ण उदारतासे जो कुछ उसने श्रच्छा काम किया हो उस पर उसे वधाई भी देते हैं।

फिर वे उसकी एक जीवित मूर्त्त वनाते हैं अर्थात् ईथर, एस्ट्रल और मनोलोककी प्रकृतियोंसे उसके कारण देह, मनोमयकोप, एस्ट्रल शरीर और ईथरमयशरीरकी विलक्कल नकल या प्रतिमूर्त्ति बना लेते हैं और उसे अपने निकट रखते हैं कि उसको समय-समय पर देख सकें। प्रत्येक ऐसी मूर्त्तिका श्रोजसी सम्बंध उसके जीवित पुरुषसे इस प्रकार वाँध दिया जाता है कि उसका हर एक विचार या मनका भाव इस मूर्त्तिमें भी आ जावे और दिख पड़े। इस प्रकार गुरुदेव उस मूर्त्तिको देखकर तुरन्त यह जान लेते हैं कि पिछले निरीच्चणके बाद इसके शरीरमें कीन-कीन चोभ हुए, कीन-कीन चिन्ताएँ आई, कीन-कीन अपवित्र विचार श्राये, इत्यादि। जब बहुत काल तक कोई बड़ा दोष नहीं दिख पड़ता तब गुरुदेव उस शिष्यको स्वीकार कर लेते हैं।

स्वीकार कर लेनेसे शिष्य और गुरुदेवमें ऐसी एकता और घनिष्टता हो जाती है जिसकी हम लोग कल्पना नहीं कर सकते। गुरुदेव उस शिष्यके ओजसको अपने ओजसमें मिला लेने का प्रयत्न करते हैं कि उनकी शक्तियाँ शिष्य पर सदैव ध्यान दिये विना भी, कार्य करती रहें। पर इसका फल एक दिशामें ही नहीं होता, दोनों दिशाओं में होता है। यदि शिष्यके भावों में या विचारों में कुछ ऐसी अशुद्धि है जिसका प्रभाव गुरुदेव पर पड़ेगा तो ऐसी एकता संभव न हो सकेगी। जब तक यह अशुद्धि

उसमेंसे निकल न जाय तव तक इस शिष्यको स्वीकृतिके लिये ठहरना पड़ेगा । परीक्ष्यमाण शिष्य दूसरे साधारण लोगों से विशेष अच्छा है ऐसा आवश्यक नहीं है। वह किसी-किसी वातमें गुरुदेवके कार्यके लियें विशेष उपयुक्त है और उसकी दीर्घकाल तक जाँच करना आवश्यक है। क्योंकि वहुतसे छोग आरंभमें वड़े उत्साह्युक्त, सेवा भरे और आशादायक दिख पड़ते हैं। पर पीछेसे निस्त्साह होकर लीट पड़ते हैं।

उस जीवित मूर्त्तिमें अकेले दोषही नहीं दिख पड़ते। शिष्यकी एस्ट्रल ( भुवर्लोक ) और मनोलोककी चेतनाका पूरा पूरा व्यौरा उससे जाना जाता है। उससे मनुष्योंके प्रति आशीर्वाद श्रौर सबके प्रति शांतिके भावका प्रवाह निकलना चाहिये। आगे बढ़नेके छिये सिक्रय भलाई चाहिये न कि केवल मानिसक सद्इच्छा।

यदि परीक्यमाण शिष्य कोई असाधारण अच्छा काम करे तो क्षणमात्रके लिये उसके प्रति गुरुदेवका ध्यान विशेष आता है और वे, यदि योग्य समझें, तो शिष्यका किसी प्रकारसे उत्साह बढ़ा देते हैं या फिर वे उसकी बाटमें कुछ नया काम रखकर देखते हैं कि वह शिष्य उसे किस प्रकार करता है। बहुधा यह काम वे अपने किसी पुराने शिष्यको सौंपते हैं। शिष्यको ऐसे सेवाके अवसर देना जवावदारीका काम है। इन अवसरोंको शिष्य प्रहण करे तो अच्छी बात है पर यदि वह उन्हें प्रहण न करे तो यह उसकी ठुटि समभी जाती है और ऐसे अवसर फिर प्राप्त करनेमें उसे थोड़ी अङ्चन होती है। परीक्ष्यमाण शिष्यकी कोई विशेष परीचा नहीं होती। कभी थोड़े ही सप्ताहोंमें यह परीक्षा हो चुकती है और कभी-कभी इसमें कई वर्ष बीत जाते हैं। संसारका यह समय श्रसाधारण है। इस समय बहुतसे वह जीवात्मा और योगश्रष्ट जीव भी जन्म ले रहे हैं। ये लोग पूर्वकर्मानुसार शीघ्र युवावस्थामें ही मार्गमें प्रवेश कर लेते हैं। यह ध्यानमें रखना चाहिये कि कारणशरीरस्थ जीवात्माको ये पद प्राप्त होते हैं; उसकी दीक्षा होती है, न कि स्थूलशरीर की, और जीवात्माकी आयुका निर्णय करना बड़ा कठिन है। मातापिताओं को चाहिये कि ऐसे ऊँचेजीववाले वालकों के प्रति कठोरता या क्रूरताका वर्ताव थोड़ा भी न करें। ऐसे वालकों को निरंतर प्रेमके वातावरणमें रखना चाहिये। भय उनके पास कभी न पहुँचने पावे। कभी-कभी मातापिता या शिक्षकके क्रूरताके वर्तावसे ऐसा मयंकर परिणाम होता है कि उस वालकका आध्यात्मविकास उस जन्मके लिये बहुत कुळ रक जाता है। दूसरे साधारण वालकों में भी क्रूर वर्तावसे उनका विकास बहुत कुळ विगड़ जाता है।

भगवान मैत्रेय ऋषीश्वर देव और मनुष्य दोनों के गुरु हैं। ईश्वरकी आध्यात्मिक व्यवस्थामें ये जगतके धर्म और शिक्ताविभाग के मंत्री हैं। जहाँ श्रावश्यकता होती है ये स्वयं प्रगट होते हैं या अपने शिष्यको भेजकर नया धर्म देशकालकी श्रावश्यकतानुसार स्थापित कराते हैं। सत्य तो एकही है पर उसके प्रचारका रूप देशकालानुसार वदल जाता है। इस कार्यमें उनके सहायक महर्षि कुशुमि हैं जिनके साथी महिष मरु हैं। महिष्म मुद्राय (श्व० ४१२४) में है। भावी मनुष्य-जातिके गुरु महिष् कुशुमि श्रीर मनु महिष्म होंगे। श्रव यहाँ पर तीन वालकोंको परीक्ष्यमाण शिष्य वनाते समयका वर्णन लिखते हैं जिससे पाठक समम सकेंगे कि यह क्रिया कैसी होती है। यह लगभग १६१४-१५ की बात है।

#### परीक्ष्यमाण-शिष्यपद-प्राप्तिकी क्रिया

हमलोगोंको गुरुदेव कुथुमि अपने वरामदेमें वैठे मिले। इम इन तीन वालकोंको उनके पास ले गये। उन्होंने अपने हाथ **उ**नकी श्रोर बढ़ाये। प्रथम बालकने सुन्द्रतासे घुटना टेककर चुम्बन किया और वह गुरुदेवके घुटनेका आसरा पकड़कर घुटनेके वल खड़ा रहा। सवकी दृष्टि गुरुदेव पर जमी हुई थी और उनकी अन्तरात्माएँ उनकी श्राँखों द्वारा गुरुदेवके पास पहुँ चतीसी प्रतीत होती थीं। वे बड़ी सुन्द्रतासे मुस्कुराये श्रौर वोले: "मैं विशेष आनन्दके साथ तुम्हारा स्वागत करता हूँ ! पूर्व जन्मोंमें तुम लोगोंने मेरे साथ काम किया है और मुक्ते आशा है कि इस बार फिर तुम वैसा ही करोगे। मैं चाहता हूँ कि जगद्गुरुके त्रानेके पूर्व तुमलोग हमारे संघके सदस्य वन जाओ; इस कारण इस जीवनमें इतने शीघ्र तुम्हारे साथ यह क्रिया होती है। यह याद रखो कि तुम जो कार्य साधना चाहते हो वह बहुत ही उत्तम है, पर सरल नहीं है, क्योंकि तुम्हें इन छोटे शरीरों पर पृर्ण संयम प्राप्त करना है। अपनेको विलक्कल भूल जास्रो और केवल दूसरोंके लिये कल्याणकत्ती बननेको तथा जो काम तुम्हें सौंपा गया है उसे साधनेके लिये ही जियो।"

प्रथम घुटना टेके लड़केकी ठुड्डीके नीचे हाथ लगाकर गुरुदेवने उससे पूछा कि क्या तुम ऐसा कर सकोगे ?

उन सबने उत्तर दिया कि हम प्रयत्न करेंगे। तब गुरुदेवने प्रत्येकको वारी-वारीसे आवश्यक आदेश दिया और हर एकसे अलग अलग पूछा कि क्या तुम जगतमें मेरी निगरानीमें कार्य करोगे? हर एकने उत्तर दिया, "मैं कहँगा।" तब उन्होंने प्रथम

वालकको अपने सामने लेकर अपने दोनों हाथ उसके सिरपर रखकर कहा "तो मैं तुम्हें अपना परीक्ष्यमाण शिष्य वनाता हूँ और आशा करता हूँ कि तुम शीब्रही मेरे साथ इससे विशेष घनिष्ट संवधको प्राप्त होगे। इसलिये मैं तुन्हें श्राशीर्वाद देता हूँ कि तुम इसे दूसरोंके पास पहुँचात्रो।" उनके बोलने पर लड़केका तेजोमंडल या त्रोजस (aura) वहुत वढ़ गया। उसमें प्रेम और भक्तिके रंग जीवित अभिसे चमक उठे और वह वोला, 'हे गुरुदेव, मुझे सचमुचमें अच्छा वनाइये, आपकी सेवा करने योग्य मुझे वनाइये।" पर गुरुदेवने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, "मेरे प्यारे वालक, केवल तुम ही इसे साध सकते हो; पर मेरी सहायता श्रीर श्राशीर्वाद सदैव तुम्हारे पास रहेंगे"। इसके पश्चात् उन्होंने दूसरे दो वालकोंके साथ भी वही छोटी-सी क्रिया की। उनके श्रोजस भी बढ़ गये, दृढ़ श्रीर स्थिर हो गये, और उनके रंग भी उत्तम हो गये। तव गुरुदेव उठे और वालकोंसे वोले, "मेरे साथ यात्रो, देखो, मैं क्या-क्या करता हूँ।" वे हमें नीचे एक गुफामें ले गये श्रीर वहाँ पर रखी हुई सव परीक्ष्यमाण शिष्योंकी मूर्तियाँ वताई और कहा, "अव मैं तुम्हारी मूर्तियाँ वनाता हूँ।" ऐसा कहकर उनके सामने ही उन्होंने वे मूर्तियाँ वना दी श्रीर मूर्त्तियोंमें नाना रंगोंका अर्थ बताकर कहा कि अमुक रंग वदछ जाना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा, "मैं इनको रोज देखूँगा कि तुमलोग किस प्रकार सुधर रहे हो और तुम ऐसा प्रयत्न करना कि मैं सुधार देखकर खुश होऊँ।" ऐसा कहकर उन्होंने अपना अंतिम आशीर्वाद दिया।

प्राप्तवय शिष्योंको अपने योग्य सेवाकार्य दूंद निकालने की स्वतंत्रता रहती है। पर कुमार शिष्योंको कभी-कभी विशेष संदेश मिळ जाते हैं। ऐसे ही प्रसंगोंके दूसरे उपदेशोंमें से कुछ आवश्यक बातें यहाँ उद्धृत की जाती हैं। "मार्गमें उन्नित करनेके लिये निरंतर सावधान रहना चाहिये। सेवाके मौकोंके लिये ताकमें रहो; इतना ही नहीं, वरन सेवाके मौकोंको पैदा करो। छोटी-छोटी बातोंमें सेवा करने का अभ्यास डालनेसे बड़े मौकोंको न चूकोगे.......अपने गुरुसंबंधको न भूलो; उसकी यादसे व्यर्थ विचारोंसे बचोगे श्रौर आध्यात्मिक माव बढ़ा सकोगे। संसारी जीवनकी छोटी खाली और श्रसार बातोंमें फँसना तुम्हारे लिये श्रसंभव होना चाहिये पर वे छोटी वातें भी हमारी समझ श्रौर द्याके वाहर न रहें। तुम स्वयं महात्मा श्रमी नहीं वने हो। पर जो महात्मा हो चुके हैं उनसे तुम एक हो गये हो। तुम्हें उनका प्रकाश जगतमें फैलाना चाहिये श्रौर इसलिये स्वयं छोटे सूर्य बन जाना चाहिये। जगत तुम्हारी कदर न करे, पर तुम्हारा कर्तव्य तो प्रकाश देना है ही।

तुममें सहातुभूति, प्रेम, सहिष्णुता वढ़नी चाहिये। वाणी रूखी या कठोर न हो, यथावाद कभी न करो; यह सोचे विना वोलो ही नहीं कि जो बोलते हो वह सत्य, प्रिय और हितकारी है। प्रेमकी मात्रा अपनेमें बढ़ानसे बहुतसी भूलोंसे मनुष्य वच ज़ाता है। प्रेम सब गुणोंमें श्रेष्ठ है। उसके विना दूसरे सब गुण वेकाम हैं। वुरे विचारोंको विलक्कल दूर रखो। चिड़चिड़पनसे श्वेतसंघकी चेतनासमुद्रकी शांतिमें मंग होता है। अभिमानसे उन्नति रुक जाती है। विचार और भाषण की पूर्ण मुन्दरता बनाये रखो। शिष्यको सदैव द्यालु, सेवाशील, सहायक, और पूर्ण आत्मसमर्पणयुक्त रहना चाहिये, कभी-कभी ही नहीं पर सदैव। यह याद रखो कि जो समय सेवामें नहीं वीतता वह हमारे लिये खो जाता है। अपने भीतरकी वुराई जीतने का प्रयत्न करना निरंतर जारी रखो; तभी तुम सिद्धि प्राप्त करोगे। सिद्धि-प्राप्ति केवल दृढ़ संकल्पकी बात है।

सदैव नम्र बने रहो । एकताके प्रयत्नमें दूसरोंका अपने भीतर समावेश कर लेना, उनको अपने खोजसमें रख लेना, उनसे एक हो जाना, काफी नहीं है । यह भी बड़ी बात है पर तुम्हें प्रत्येकरो एकत्व प्राप्त करना है । हर एक भाईके हृदयमें प्रवेश करके उसे समझना है, छुत्हळसे नहीं, क्योंकि भाईका हृदय गुप्त और पवित्र स्थल है । वहाँ प्रवेश केवल सम्मानके साथ उसे सममकर सहानुभूति और सहायता देनेके हेतुसे ही, होना चाहिये।

श्रंपनेको पूर्णतया भूल जाना, जगकी सेवामें श्रपनेको पूर्ण ह्रपसे समर्पण कर देना, सरल नहीं है पर हम छोगोंको यही साधना है। तुममें सेवाके लिये पूर्ण उत्साह भरा रहे। दूसरोंसे मिलकर कार्य न कर सकना, जल्दीसे नाराज हो जाना, अपना ही ध्यान रखना, दूसरोंकी आध्यात्मिक उन्नतिके विषयमें छुतूह्ल, ये सभी त्याज्य दोष हैं।"

कदाचित् पाठक इन उपदेशोंको श्रत्यन्त साधारण समझें पर गुरुदेव शिष्योंको श्रपने जगतमें वुलाते हैं जहाँ पर सरलता श्रीर सचरित्रता की वड़ी आवश्यकता है।

कोई भी अशुद्ध भाव मनमें आकर चाहे दस मिनटमें ही मिट जाय पर वासना शरीर पर जो उसका असर पड़ता है वह ४५ घंटे तक बना रहता है। जब अपनेमें कोई दुर्गुण समक्त पड़े तो उसके विपरीत गुणको अपनेमें बढ़ानेसे वह दुर्गुण मिट जायगा। दूसरोंको कष्ट न देनेके भावको बढ़ानेसे बहुतसे दुर्गुण मिट जाते हैं जैसे बुरे अच्चर लिखनेमें लोग दूसरोंकी अड़चनका थोड़ा भी ख्याल नहीं करते। मनमें यथा चिंता कभी न करनी चाहिये। बुरे भावों की अपेक्षा अच्छे भावोंका प्रभाव वासना अरीरमें अधिक देर तक टिकता है क्योंकि अच्छे भावों का असर उँची अन्तर्भूमिकाश्रोंमें भी होता है। बहुत अधिक हँसनेका प्रभाव वासना शरीर पर बुरा होता है। उससे अच्छे प्रभावोंका प्रवेश एक जाता है। सदैव प्रसन्न रहिये, पर उस प्रसन्नता में भद्दापन या गँवारपन न घुसने पाये। कोई भी हँसी शिष्टाचार और विनय की हद के बाहर न जाने पाये। जब तक श्रापके वासना या एस्ट्र शरीर पर श्रापके कारणशरीरस्थ जीवातमा ( Ego) का अधिकार है तब तक हँसना ठीक है; उस अधिकार के मिटने पर एस्ट्रल शरीर उसके कव्जेसे निकल जाता है। किसीके मनको दुखानेवाळी हँसी न हो। बहुत संभ्रम या गड़बड़ी न मचानी चाहिये। काम विलक्जल ठीक हो पर वह पूर्ण शांति के साथ किया जाय न कि बहुत तेजी या गोल्मालके साथ।

शिष्य जैसे विचाररूप वनावेगा वैसेही रूप उसके घरमें भरे रहेंगे; इसिलये उसे अच्छे, शुद्ध, ऊपर उठानेवाले विचार सोचना चाहिये। प्रत्येक वेकार शब्द वोलने के कारण शिष्यके अपने गुरुदेवके सम्बन्धमें भेद होता है। इसिलये उसे बड़ी सावधानी से प्रत्येक शब्द पर ध्यान देना चाहिये। प्रत्येक शब्द पर ध्यान देना चाहिये। प्रत्येक शब्द से ईथरमें रूप वनता है, यह विचार-रूपसे भिन्न है। यदि शब्द अच्छा हो और शुद्ध रीतिसे बोला जाय तो उसका अच्छा रूप बनेगा। अश्लील शब्द, शपथ और गँवारी शब्दों का व्यवहार त्याग देना चाहिये। बात जरा भी बढ़ाकर न कही जाय। शुद्ध उच्चारणमें त्रुटिन हो।

इन श्राध्यात्मिक विषयों में कोई बात बढ़ाकर नहीं छिखी जाती। ठीक वैसी ही लिखी जाती है जैसी वह चाहिये। कर्मोनयमानुसार जिज्ञासु की मेंट किसी श्रपनेसे आगे वढ़े व्यक्ति से हो जाती है जिसके द्वारा उसे बहुतसी सहायता मिछती है। बहुधा गुरुदेव भी किसी शिष्यको आगे नहीं बढ़ाते जब तक वह किसी पुराने शिष्यके संपर्कमें न रह चुका हो और उसके द्वारा उसे सहायता न मिली हो। पर हर एक गुरुकी भिन्न रीति रहती है। हर एक व्यक्ति के साथ वही वर्ताव होता है जो उसके लिये श्रेष्ठ है।

जिसका कर्म सत्संगसे दूर किसी निर्जन स्थानमें रहनेका हो, जिसे मार्गस्थ शिष्योंका सत्संग न मिछ सके वह भी उन्नति कर सकता है पर उसे कठिनाई विशेष पड़ेगी। वह अपने प्रयत्नसे अपनी इच्छाशक्ति श्रौर निश्चय को वढ़ावेगा। पर किसी पुराने शिष्यसे वह पत्रव्यवहार कर सके तो उसे वहुत सहायता मिल सकेगी और उसकी कठिनाइयाँ दूर हो सकेंगी।

—:o:—

#### अध्याय ५

### स्वीकृति

गुरुदेवके शिष्यको स्वीकार कर लेनेसे शिष्यके जीवनमें वहुत वड़ा परिवर्तन हो जाता है पर उसमें पिछले पढ़ की कियाविधि की अपेक्षा कुछ अधिक किया नहीं होती जैसा कि नीचेके वर्णनसे जान पड़ेगा।

### स्वीकृति का वर्णन

गुरुदेव कुथुमिके आश्रममें पूर्ववत् जाने पर हमें वहाँ महर्षि मरु उनसे गम्भीर वार्तालाप करते दीख पड़े। हमलोग स्वभावतः चणमात्रके लिये एक श्रोर खड़े रहे। पर गुरुदेवने स्वागतकी प्रकाशमयी मुस्कुराहटके साथ हमलोगोंको बुला लिया श्रीर

इमलोगोंने प्रथानुकूल प्रणाम किया । उम्मेदवारोंमेंसे एक शिष्यको गुरुदेवने एक बार "सदैव चमकता प्रेमतारा" कहकर संबोधित किया था। उसे अपने गुरुदेवके लिये अत्यंत प्रेम है। गुरुदेवने उसकी ओर मुस्कुराकर पूछा: "क्या तुमने अन्तिम निश्चय कर लिया कि तुम मेरी आज्ञामें कार्य करोगे और मनुष्य जातिकी सेवाके लिये अपनेको ऋर्पित कर दोगे ?" उस शिष्यने गम्भीरतासे कहा "मेरी यही निश्चय है।" गुरुदेवने फिर कहा, "मैं तुम्हारे प्रयत्नसे बहुत खुश हूँ श्राशा करता हूँ कि तुम उसमें कमी न करोगे। तुम्हारे कार्य और तुम्हारे निश्चयके कारण मैं तुम्हारे परीक्ष्यमाण कालकी अवधिको घटा सका हूँ। मुक्ते इस वातकी खुशी है कि तुमने उन्नतिका सबसे छोटा मार्ग प्रहण किया है। यह दूसरोंको अपने साथ मोच मार्ग पर ले आनेका है। पूर्णतया निःस्वार्थ प्रेम जगतमें सबसे अधिक वलवती शक्ति है पर ऐसे बहुत कम लोग हैं जो उसे ईर्ष्या या वलपूर्ण वासनासे वचाकर पवित्र रखते हैं चाहे वह प्रेम अकेले एक ही व्यक्तिके लिये क्यों न हो। तुम्हारी उन्नति इसिंखये हुई है कि तुमने उस प्रेम ज्वाला को एक साथ ही कई व्यक्तियोंके प्रति प्रज्ज्वित रखा है। तुमने अपनी शक्ति बढ़ाई है पर इसे चौर वढ़ाओ। विवेक चौर सावधानीको और भी वढ़ात्रो ताकि तुमको ठीक समय पर ही योग्य कार्य करना सूम पड़े, दस मिनट पीछे नहीं। बोलने और कार्य करनेके पूर्व यह सोच छो कि परिणाम क्या होगा। तुमने बहुत अच्छी उन्नति की है और मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ।"

फिर गुरुदेवने प्रत्येक उम्मेदवारके सिर पर श्रस्मा-अस्मा हाथ रखकर कहा, "मैं तुम्हें पुरानी प्रथाके अनुसार चेस्रा स्वीकार करता हूँ।" फिर उन्होंने प्रत्येकको अपने तेजोमण्डल या ओजसमें खींच लिया ताकि कुछ चणके लिये शिष्य अपने गुरुदेवमें मिल कर अदृश्य हो गया। निकलते समय वह अवण्नीय आनन्द और गौरवसे युक्त था। उसमें उसके गुरुदेवके विशेष गुण अव विशेष पूर्णतासे प्रगट थे। ये सब हो चुकने पर गुरुदेवने प्रत्येकसे कहा, "मैं तुन्हें अपना आशीर्वाद देता हूँ।" फिर सबसे कहा, "मेरे साथ आओ, मैं तुन्हें तुन्हारे नये पदके स्वीकार किये जानेके छिये तथा रिजस्टरमें नाम दर्ज होनेके छिये अधिकारियोंके पास पेश करूँगा।" वे उन्हें महाचौहानके पास ले गये। उन्होंने ध्यानसे उन लोगोंको देखकर कहा, "तुम बहुत छोटे हो, इतनी छोटी उमरमें यह पद पा लेने पर मैं तुन्हें बधाई देता हूँ। जिस पदको तुम प्राप्त हुए हो उसके योग्य तुन्हारा आचरण बना रहे इस पर ध्यान देना।" यह कहकर उन्होंने उनका नाम अविनाशी रिजस्टरमें दर्ज किया और जो खाने अभी नहीं मरे जा सकते थे उन्हों वताते हुये उन्होंने शिष्योंसे कहा, "हम आशा करते हैं कि इन खानोंमें भी हमें शीघ ही छिखना पड़ेगा।"

महाचौहानके यहाँसे छोटते समय गुरुदेव अपने नये शिष्योंको अपने घरके पासकी गुफामें ले गये और वहाँ पर उनके सामने उनकी जीवित मूर्त्तियाँ मिटा डालीं जो कुछ थोड़े समय पूर्वे ही बनाई गई थीं। उन्होंने कहा, "अब तुम सदाके लिये मेरे अंग हो गये इसलिये इन मूर्त्तियोंकी आवश्यकता अब न पड़ेगी।

इस विधिको कारण शरीरकी दृष्टिसे देखनेसे गुरुदेव जीवित श्राप्तिके तेजोमय गोलेके समान दिखते हैं जिसके भीतर जुदे जुदे रंगोंके कई समकेन्द्रिक गोले समाये हैं। स्थूल श्रीर दूसरे शरीर इस प्रकाशमय वस्तुके केन्द्रमें थे और यह वस्तु कई सौ गजकी गोलाईमें थी। शिष्य गुरुदेवके निकट पहुँचने पर इस गोलेके केन्द्रमें पहुँच जाता है। इस कियाकालमें वह वहीं रहता है। गुरुदेवके ब्योजसका प्रभाव शिष्य पर तो पड़ता ही है पर यदि शिष्यमें कोई विशेष गुण हों तो गुरुदेवके ओजसके वे केन्द्र उनसे प्रभावित हो जाते हैं।

शिष्य और गुरुदेवका यह अवर्णनीय ऐक्य जो इस विधिमें त्रारंभ होता है नित्यके लिये वन जाता है। इसके पश्चात् शिष्य कहीं भी हो उसके ऊँचे कोषोंसे गुरुके कोषोंके समान कंप रहते हैं। उसपर सदैव यह क्रिया जारी रहती है और धीरे धीरे वह अपने गुरुके समान-सा वन जाता है और उसके द्वारा गुरुदेवकी शक्ति नीचे लोकोंमें जगतकल्याणार्थ वितरित हो सकती है। गुरुका सदैव ध्यान करते रहनेसे और उनके निकट पहुँचनेकी अति दृढ़ इच्छासे शिष्यके कोष गुरुदेवकी शक्ति प्रहण करनेको उन्मुख और आशा लगाये रहते हैं। उनके शब्दकी आशा लगाये रहनेसे वे उनके कंपोंको प्रहण करनेके लिये तैयार और नीचे प्रभावोंके लिए प्रायः वंद रहते हैं। शिष्यके कोषोंको वलपूर्वक एकदम वदलनेसे उसको वड़ा नुकसान होगा। स्वीकृत शिष्य गुरुदेवकी चेतनाका एक द्वार या अङ्ग वन जाता है। गुरुदेव उसके द्वारा सुन, देख और अनुभव कर सकते हैं। जो कुछ शिष्यके सामने किया जाय वह मान लो, गुरुदेवके समक्ष ही किया है। वे सब बातें गुरुदेवके समज्ञ ही किया है। वे सब वातें गुरुदेवकी चेतनामें पहुँच जाती हैं। शिष्य यदि अपने गुरुके प्रति भक्तिका विचार भेजे तो उससे एक फाटक-सा खुल जाता है श्रौर गुरुके पाससे प्रेम श्रौर शक्तिका पूर्ण प्रवाह वह आता है। इसीप्रकार यदि शिष्यके मनमें कोई भारी क्षोभ श्र्या जावे तो वह भी गुरुदेवके नीचे कोषोंमें प्रवेश कर जायगा। ऐसे प्रसङ्ग पर गुरुको शिष्यके और अपने वीचमें एक परदा डाल देना पड़ता है।

जबतक शिष्यको दूसरोंका हितचिंतन करते रहनेकी, दूसरोंको अपना ध्यान और शक्ति देनेकी, कल्याणकारी विचार और आश्रीवाद सव मनुष्योंमें वितरण करनेकी आदत न पड़े तबतक वह शिष्य स्वीकृत नहीं होता। संसारी मनुष्योंके विचार अपने विषयके होनेके कारण उनकी शक्तियाँ उनके भीतरकी ओर प्रवेश करती हैं पर शिष्यको सदेव बाहरकी ओर ही ध्यान रखकर निरंतर दूसरोंके प्रति सेवा और प्रेम भेजना चाहिये।

गुरुदेवको यदि तिच्यतसे अमेरिकाके न्यूयॉर्क नगरमें ईथरखंडमें शक्ति भेजनी पड़े तो इतनी दूर ईथरकी धारा भेजनेमें बहुत शक्ति खर्च करनी पड़ेगी। इन्हें शक्ति ऊँचे लोकोंमें भेजकर न्यूयार्कमें नीचेके खंडोंमें उतारनी पड़ेगी। ऐसे उतारनेमें प्रायः आधी शक्ति वेकाम जाती है। यदि न्यूयार्कमें अथवा निकट कोई शिष्य हो तो गुरुदेवके कार्यमें बहुत सरलता होगी।

स्वीकृतिके श्रारम्भकालमें शिष्यको ऐसा भान होगा कि

मुममें से बहुतसी शिक्का प्रवाह किया जाता है; किधर

जाता है इसका उसे ज्ञान नहीं होता। उसे केवल यह भान
होता है कि मुममें से बहुत-सी जीवित अग्निका प्रवाह हो रहा

है श्रीर वह मेरे पड़ोसमें भरता जाता है। थोड़ा ध्यान देने पर

प्रवाहिदशाका ज्ञान भी होने लगता है। आगे जाकर यह भी

ज्ञान होने लगता है कि उस प्रवाहसे किसकी सहायता हो रही है।

वह उस प्रवाहकी दिशाको बदल नहीं सकता। इससे आगे

गुरुदेव ऐसा न कर केवल शिष्यको श्रादेश दे देते हैं कि श्रमुक

मनुष्यको हूँ दकर शक्ति दे दो। जब कभी गुरुदेव शिष्यसे

कार्य करा सकते हैं तो वे उसे वह काम करनेको दे देते हैं।

शक्तिका कोमल मंद प्रवाह तो शिष्यमें से सदैव बहता रहता

है, जिसका भान उसे कदाचित् न हो पर जब असाधारण

परिमाणमें वह शक्ति उसमें से प्रवाह करती है तो उसे उसका भान अवश्य हो जाता है।

यों तो गुरुदेवकी शक्तिका प्रवाह उनके शिष्यों द्वारा ही होगा पर किसी भी पवित्र संस्कारयुक्त सेवा करने वाले व्यक्तिके द्वारा भी गुरुदेव शक्ति भेज सकते हैं। गुरुदेव नाना प्रकारकी शक्तियाँ भेजते हैं। एक शिष्य एक प्रकार की शक्ति के लिये और दूसरा दूसरे प्रकारकी शक्तिके लिये उपयोगमें लाया जायगा। यह शक्ति भू, भुवर्, स्वर् और वुद्धि लोककी रहती है पर भूलोकमें उसका प्रवाह हाथ पाँवसे होता है। इसलिये सारा शरीर, हाथ, पैर, नाखून, कपड़े, सब पूर्णतया साफ होने चाहिये। तंग जूतोंसे पाँवकी आकृति विगड़ने न पावे नहीं तो गुरुदेव पूरे शरीरका उपयोग न कर सकेंगे। कभी-कभी गुरुदेव शिष्यके द्वारा किसी व्यक्तिको विशेष संदेश भी भेजते हैं।

साधारण मनुष्य निद्राकालमें भुवर्लीकमें जो अनुभव करता है उसकी पूर्ण सही स्मृति उसे जामतकालमें नहीं रहती। यह शक्ति केवल दीर्घकालके दृढ़ प्रयत्नसे ही प्राप्त हो सकती है। इसिल्ये जागतेही स्वप्नको स्मरण कर लिख लेना चाहिये नहीं तो विस्मरण हो जायगा। सदाचारकी विशेष उन्नित होनेसे भी वह स्मृति आपसे आप रहने लगती है। पर उस उन्नितका प्रभाव उसके देहाभिमानी व्यक्तिभाव (Personality) पर भी पड़ता है और वह भी बलवान हो जाता है। इसिल्ये जो कुछ स्मृति रहेगी उसपर उसके व्यक्तिभावकी छाप पड़ जायगी। बहुत वर्षों तक गुरुदेवका ध्यान करनेसे, उनके प्रति भक्ति और श्रद्धा करनेसे, कभी कभी यह संभव हो जाता है कि शिष्यको गुरुदेवका सन्देश दूसरे लोगोंके प्रति मिले। महात्माकी चेतना बहुधा निर्वाण लोकमें रहती है। शिष्य तो अपनी

योग्यतानुसार शरीरसे बाहर निकल कर जुदे जुदे लोकों में विचरता है पर गुरुदेवका संदेश उसे कारणदेहसे नीचे नहीं मिलेगा। कारणदेहमें शब्दोंका प्रयोग नहीं होता, विचार और मनके भाव खर्लोंक और भुवलोंककी प्रकृतिके रूप धारण कर लेते हैं। कारण-शरीरस्थ जीवात्मा किसी विषयको देख कर उसे पूरी तरह समम लेता है। उसे हमारी तरह सोचना नहीं पड़ता। गुरुदेवके विचारसे शिष्यके ऊपर सुन्दर लोटी-लोटी गोलियोंकी वर्षासी होती है। हर एक गोलीमें एक विचार और उसका दूसरे विचारोंसे संबंध स्पष्ट किया हुआ रहता है पर ऐसी एक वर्षाको भूलोंकके शब्दोंमें लिखनेमें कदाचित बीस पृष्ठ लग जायेंगे। गुरुदेवने तो अरूप भूमिकाका अमूर्त विचार भेजा, शब्दोंको न बोला न विचार। शब्द तो शिष्यके मस्तिष्कने बनाये और इनमें उस मस्तिष्कके दोप भी आ सकते हैं। अशिद्वित शिष्य उस सन्देशको अनजानमें वदल भी दे सकता है।

शिष्य किसी विषयके अपने विचार गुरुद्वेक विचारोंके साथ रखकर उनका मिळान कर सकता है। इसकी एक विधि यह है कि चेतनाको जितना ऊँचा उठाते बने उतना उठाकर फिर अचानक उसी विषयका विचार करना चाहिये तो तुरंत जान पड़ेगा कि वह विषय गुरुद्वेको कैसा दिखता है। इस शक्तिका उपयोग केवळ अत्यंत कठिनाईकी अवस्थामें ही करना चाहिये।

जो लोग दीर्घकाल तक गुरुदेवका ध्यान करते हैं और उनकी हुढ़ विचारमूर्ति बनाते हैं (जैसा कि अन्तरंग स्कूलके सदस्य करते हैं;) उन्हें वह मूर्ति जीवित दिखने छगती है और गुरुदेव उसके द्वारा अध्यात्म शक्ति भेज सकते हैं। इस ध्यान का हेतु भी यही है। इस अनुभवसे शिष्य गुरुदेवकी शक्तिको पहिचानने

लगता है। ऐसा भी एकाधबार हुआ है कि शिष्यको धोखा देनेके लिये किसी नीच व्यक्तिने गुरुदेवका रूप धारण कर लिया पर जो शिष्य गुद्ध है उसे धोखा नहीं हो सकता। स्वीकृत शिष्यको यदि उसके दोप किसीने न बताये हों तो उन्हें वह स्वयं हुँ द निकाले और उनको सदैव मिटाता रहे। सेवाके विचारों को चित्तमें सदा बनाये रखनेसे शिष्य बहुतसे दोषोंसे बच जाता है। शिष्य सदा मनको खींचा हुआ या कर्ष युक्त नहीं रख सकता। कुछ विश्राम या विनोद उसे देना ही पड़ेगा पर उस विनोदमें अपवित्रता या कठोरता लेशमात्र भी न हो। बारवार हार जाने पर भी शिष्यको निराश न होना चाहिये। हद संकल्पसे बहुतसी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। बहुतसे शिष्योंको शक्तियुक्त ताबीज अथवा शक्ति भरे रहोंसे अधिक सहायता मिलती है।

शांति—शिष्यको शांत और समतायुक्त रहना चाहिये। जितना काम शांतिपूर्वक सध सके उतनाही करना चाहिये। कुछ भावपरिवर्तन तो अवश्य होगा। वाह्य गर्मी, सर्दी, मौसम, सूखी या तर हवा, वहुत थकावट, अपना पाचन, ऐसी कई वातों का प्रभाव हमारी शांति पर पड़ता है। भुवर्लोकमें भी कोई कोई व्यक्ति हमारी शांकि खींच ले सकते हैं। शिष्यके नाजुक बनते जानेसे इन वातोंका प्रभाव उसपर विशेष पड़ता है। उसे यह भी याद रखना चाहिये कि बहुत आशीर्वाद पानेके पश्चात उसकी विपरीत किया, उसका अवसाद, उसकी थकावट-सी भी होती है। इसमें किसी डरकी वात नहीं है। पर ऐसे समयमें बहुत अधिक फिसल जाना भी संभव है। उस समय छोटी सी लालच भी वड़ी वन जा सकती है।

वामाचारी मिलन सिद्ध-शक्ति परकल्याणमें ही खर्च होनी चाहिये पर कोई कोई दूसरोंको तुकसान पहुँचानेमें शक्ति खर्च

करते हैं। ऐसा दुरुपयोग करनेवाले नीच स्वभावके व्यक्तियोंसे चचना चाहिये। प्रकृतिका नियम है कि जहाँ दक्षिण या कल्याणकारी ऊँची शक्तियों का प्रवाह होगा वहाँ उतना ही वाम या नीचे गिरानेवाली शक्तियोंका भी प्रवाह होगा। ये छोग अपने अहंभावको पुष्ट करते हैं। हमलोग एकत्व भाव बढ़ाते हैं। ये लोग हमें भूलमें पड़े बताते हैं। उनका कहना है कि एकत्व का आव ईश्वरने हमें मुलानेके छिए वताया है। श्वेतसंघमें श्रीर इनमें सदैव मतभेद और विपरीतता वनी रहती है। इन लोगोंका विपरीत भाव महात्मात्रोंको ही नहीं वरन् उनके छोटेसे छोटे शिष्योंको भी सताता है। ये लोग भी श्रपना पक्ष बढ़ाना चाहते हैं। इनमें के बुद्धिमान लोग तो इन्द्रियभोगोंसे वैसे ही विरक्त रहते हैं जैसे वैराग्यवान पुरुष। किंतु वे अपने प्रयतों में विलक्कल न्यायान्याय-विचार रहित रहते हैं। कैसी भी वेईमानीसे पीछे नहीं हटते। जवतक गुरुदेवसे हमारे विचार मिलते रहेंगे, जवतक हम नि:स्वार्थ और प्रेममय रहेंगे तवतक हमें इनसे डर नहीं हैं। द्वेतभावमें ही उनका वल है। एक खीको ऐसे व्यक्तिने सताया। जब स्त्रीका वल न चला तव उसने अपने गुरुदेवका स्मरण किया। स्मरण करते ही वह मलीन वामाचारी लुप्त हो गया और इस स्त्रीको उसके प्रति कोई द्वेष या क्रोध न रहकर केवल अफ़सोस रह गया कि इतनी अधिक शक्तिका इस प्रकारका दुरुपयोग हो। द्वेषसे या स्वार्थक लिये शक्तिका कितना थोड़ा भी उपयोग हो वह श्वेतसंघमें पूर्णतया मना है।

गुरुदेव लाखों श्रात्मात्रों पर एक साथ प्रयोग करते हैं। उस कामसे हटाकर उनको अपने छिये वुछाना वड़े संकटकी अवस्थामें ही उचित हो सकता है।

### अध्याय ६

# दूसरी उपस्थितियाँ

इस सब कालमें गुरुदेव शिष्यसे सहायता लेनेके सिवाय उसे दीचार्थ खेतसंघके समच उपस्थित करनेके लिये तैयार करते रहते हैं। खेतसंघके कोई भी नियुक्त महात्मा एकमात्र दीक्षकके ही नाम पर दीक्षा देते हैं। जब कोई महात्मा निश्चय कर लेते हैं कि हमारा शिष्य दीचाके योग्य हो गया है तब वे उसकी सूचना देकर शिष्यको उपस्थित करते हैं और यह देखनेका कार्य संघका है कि शिष्य तैयार हुआ है या नहीं। उन्हें इस वातकी परवाह नहीं रहती कि शिष्य परीक्ष्यमाण, स्वीकृति या पुत्रत्वमें से किस पदको प्राप्त है; पर यह भी सत्य है कि दीचार्थीका प्रस्ताव और अनुमोदन दो महात्मा करें। जबतक शिष्यकी तैयारीका निश्चय न हो जाय तबतक कोई ऐसी प्रस्ताव या उसका अनुमोदन न करेगा।

इस मार्गके द्वार पर शिष्य कैसे पहुँचे ? मार्गस्थ लोगोंके सत्संगसे, थियोसॉफ़्कल समाजमें आनेसे, या थियॉसोफ़्किल साहित्य पढ़नेसे, हिन्दुधर्मके प्रन्थ पढ़नेसे, विचारके बळसे, तथा सद्गुणोंको प्राप्त कर आचरणमें परिणत करनेसे, जिज्ञासु इस मार्गके द्वार पर पहुँचेगा।

इसके लिये ये साधन चाहिये । इनका वर्णन "दैवी सहायक" पुस्तकमें हो चुका है तथा श्री गुरु-चरणेषुमें भी है। विवेक-आत्मा नित्य है, दृश्य जगत् अनित्य है। नित्यको प्रहण करना, अनित्यको त्यागना। वैराग्य-सव वस्तुत्रोंसे विरक्ति, कर्ममें पूर्ण निष्कामता, जो कर्तव्य है उसे कर्तव्य-भावसे करना, दूसरे किसी भावसे नहीं।

शमादि षट् संपत्ति, शम-वासनाका सर्वथा त्याग, मनके पूर्ण संयमसे उत्पन्न शुद्धि और विचारकी शान्त श्रवस्था।

द्म-बाह्य वृत्तियोंका निम्नह, वाणी और कर्मका पूर्ण संयम श्रीर पवित्रता।

उपरति-मृढ़ विश्वासका त्याग, क्रियाविधियोंकी अनावश्यकता। तितिक्षा-कमेंसे जो छुछ भछा युरा आवे उसे खुशीसे सहना। समाधान-एकाप्रता जिससे अपने मार्गसे न हटे। सहक्ष्यमें चित्तकी एकाप्रता।

अद्धा-गुरुकी और अपनी योग्यतामें पूर्ण विश्वास । सुमुक्षुत्व-मोत्त की इच्छा ।

इन साधनोंको विशेष ऋंशमें प्राप्त कर लेनेसे दीचाकी योग्यता प्राप्त होती हैं। आरंभसे ही इन्हें ऋपना लच्य बनाना चाहिये।

योगके यम-नियमोंमें भी साधन-चतुष्टयका बहुतकुछ समावेश है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, (बिना कमाई वस्तु न लेना) ब्रह्मचर्य श्रीर श्रपरिप्रह (पदार्थोंका त्याग) ये यम कहलाते हैं। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय (जप) श्रीर ईश्वर प्रणिधान (ईश्वरकी भक्ति) ये नियम कहलाते हैं। भगवद्गीतामें निष्काम कर्मयोग, भक्तियोग और दूसरे बहुतसे योग बताये हैं। हठयोगमें शरीरकी कियाओं द्वारा कुंडलीडत्थान और समाधि

प्राप्त की जाती है। लययोग उसका अङ्ग है। योग्य गुरुकी निगरानीके बिना हठयोग करनेमें बड़ी जोखिम है। भक्तिमार्गका पूरा खुलासा नारदभक्ति-सूत्रों (देखो 'प्रेमदर्शन,' गीता प्रेस, गोरखपुर) में दिया हुआ है।

संत्रयोगका वर्णन यहाँ विशेषतासे होगा। मंत्र पाँच प्रकारके होते हैं (१) जिनका कार्य श्रद्धा पर आश्रित है (२) जो दूसरे विचारोंके साथ मिलकर कार्य करते हैं (३) जो किसी इकरारनामेके अनुसार कार्य करते हैं (४) जिनकी क्रिया उनके अर्थ पर आश्रित है (५) जिनकी किया उनके उचारण पर आश्रित है, अर्थ पर नहीं। प्रथममें मंत्रवालेके दृढ़ विश्वाससे फल होता है ; बिच्छूका माड़ना, घावका माड़ना, इसके उदाहरण हैं। कहीं-कहीं किसी-किसी गीतसे विशेष भाव उत्पन्न होता है जैसे विलायतका राष्ट्रीय गान (नेशनल एन्थम)। तीसरेमें देवोंकी सहकारिता मिलती है जैसे मुश्रज्जिनकी नमाज पढ़नेके लिये बुलानेकी पुकार। देवगण इसमें सहकारिता करते हैं जिससे पुकार सुननेवाले उत्तेजित हो निमाजके लिये दौड़ते हैं। ईसाई धर्ममें यूकेरिस्टकी कियामें ("यह मेरा शरीर है") ( ''तुम ईश्वर शक्तिको प्रहण करो" ) ये भी बड़े बलवान मंत्र हैं। रोटीके ऊपर "यह मेरा शरीर है" इस मंत्रके कहनेसे रोटीके ऊँचे तत्त्वोंमें बड़ा चमत्कारिक परिवर्तन हो जाता है। उसमें क्राइस्टकी जीवन-शक्ति प्रवेश करती है।

जप । किसी-किसी मंत्रके जपनेसे उसका प्रभाव होता है । बार-बार जपनेसे इच्छाशक्ति बलवती होती है और इच्छित कार्यका सधना संभव होता है । ऐसे मंत्र हिन्दुओं के दैंनिक नित्यकर्ममें बहुत पाये जाते हैं। आशीर्वाद देनेसे एक विचार रूप बन जाता है जो आशीवांद्रप्राप्त मनुष्यसे मिल जाता है। उस विचाररूपकी शक्ति,
परिणाम और स्थिति आशीर्वाद देनेवालेकी इच्छा-शक्तिके बल
पर आश्रित है। यदि साधारण रीतिसे आशीर्वाद दिया है तो
उसमें कम शक्ति होगी। यदि हृद्यसे और दृंद संकल्पसे
आशीर्वाद दिया है तो उसका फल चिरस्थायी और गंभीर होगा।
पादरी जब गिरजामें पृजाके अंतमें आशीर्वाद देता है तब वह
एक निलंका बन जाता है और उसमेंसे काइस्टकी शक्तिका प्रवाह
होता है। स्वीकृत शिष्य अपने गुरुदेवका आशीर्वाद, जो
उसमेंसे वहा करता है, जिसपर चाहे उस पर डाल सकता है।
दीक्षित शिष्य इसी प्रकार सारे श्वेत-संघका आशीर्वाद जो वास्तवमें
उसके अधिपति भगवान सनस्कुमारका है, दे सकता है।

शुद्धे प्रभाववाले मंत्रोंका अव विचार करेंगे। शब्दके कंपोंसे मनुष्यके विविध कोष कंपित होकर उनके अनुकूल वनते हैं। शब्दके कंप तो वायुमें होते हैं पर उसके वहुतसे अति स्वर या चढ़े स्वर (ओवरटोन) होते हैं? संगीतमें केवल चार पाँच समझे जाते हैं पर कानसे सुननेकी शक्तिके परे भी अतिस्वरके कंप जारी रहते हैं। कुछ ऐसे वारीक चढ़े स्वर होते हैं कि उनसे वायु कंपित होकर ईथरमें भी कंप उत्पन्न होते हैं। वे ईथरके कंप मंत्र कहनेवालेको तथा उसके आसपासके दूसरे लोगोंको कंपित करते हैं और यदि किसीके प्रति मंत्र भेजा गया है तो उसमें भी वही प्रभाव उत्पन्न होगा। इस प्रकार मंत्रसे भूलोकमें तो फल होगा ही और सूक्ष्म लोकोंमें भी होगा।

ऐसे मंत्रका एक उदाहरण के है। इसे कई प्रकारसे कह सकते हैं। उसका फल भी उच्चारणके स्वरके अनुसार भिन्न-भिन्न होगा। कभी "ओ" पर जोर देकर दुगने काळ तक उच्चारण कर फिर "म्" का उचारण होता है। कभी "ओ" को थोड़ी देर कहकर "म्" को दीर्घ मात्रामें (सुत मात्रामें ) शिरमें और चक्रोंमें कहा जाता है। ऐसा 'मृ' बहुत बलवान होता है। 'ओ' को सुत करनेसे उसका प्रभाव हमपर, पासके आदिमयों पर, और हमारे आस-पास पर पड़ता है। सुत 'मृ' का प्रभाव अकेले हम पर ही होता है। कहते हैं कि ॐ को १७० रीतिसे उच्चारण कर सकते हैं। यह सब मंत्रोंमें बलवान है।

ध्यानके आरम्भमें के के उच्चारणसे सब कोषोंकी प्रकृति अनुकूल हो जाती है और हम ध्यानके योग्य बनते हैं, जैसे छोहेके डण्डेके आसपास बिजलीका प्रवाह भेजनेसे वह चुम्बक बन जाता है। लोहेके अणुओंका मुँह सब तरफ फिरा रहता है; विद्युत्प्रवाहसे सबका मुँह एक ओर हो जाता है। के के उच्चारणसे हम ध्यान या अध्ययनके लिये उत्तम स्थितिमें हो जाते हैं। उसके साथ ही साथ के की पुकार और जीवोंको—मनुष्यों और अमनुष्योंको—खींच लाती है। कोई के कथे और शक्तिसे खिंच आते हैं और कोई उसके विचित्र आकर्षक स्वर से।

इस राव्दकी किया गूढ़ है। ब्रह्मसे प्रथम शब्दब्रह्मकी उत्पत्ति होती है। वहाँ तो कोई शब्द नहीं होता, न वायु होती है; पर उसी प्रकारकी शक्तिसे जगतकी रचना होती है। जिन मन्त्रोंकी शक्ति उचारणमें है वे अपनी ही भाषामें कार्य कर सकते हैं; भापान्तर करनेसे उनकी शक्ति मिट जाती है। अच्छे कल्याणकारी मंत्र लम्बे खुले स्वरोंके बने रहते हैं। संहारकारी मन्त्र ऐसे स्वर और व्यंजनोंसे बनते हैं जिनका प्रभाव फाड़नेका, तोड़नेका रहता है जैसे क्षां, फट्। इन शब्दोंको क्रोध और वैरभरी शक्तिके साथ उचारण करनेसे उनकी संहारकारी शक्ति बढ़ जाती है। मारण, मोहन, उचाटन, वशीकरण, द्वेष आदि छः प्रयोगोंके मन्त्र बुरे रहते हैं। हमलोग केवल कल्याणकारी, सहायक, प्रेमभरे मन्त्रोंका ही उपयोग करते हैं पर सबकी किया एकसी ही रहती है। उनका हेतु यह है कि मंत्र पढ़नेवालेके या जिसकी ओर मंत्र भेजा जावे उसके सुद्म शरीरोंमें मंत्रसे कंप उत्पन्न हों। कभी उनसे नये प्रकारके कंप शरीरोंमें उत्पन्न किये जाते हैं। मंत्रके जपसे उसका प्रभाव बढ़ता है। हमारे कोषोंमें दीर्घकालके जपसे इतना प्रभाव हो जाता है कि वे मन्त्रानुकूल वन जाते हैं। शक्तिवान मन्त्रोंको अपवित्र अवस्थामें उचारण न करना चाहिये क्योंकि उस समय शरीरमें बुरे कंप भरे होंगे और मंत्रके अच्छे कंप उनको जोरसे निकालें तो संभवतः शरीरको उससे हानि पहुँचे।

मन्त्रोंकी शब्दशक्तिके सिवाय कई मन्त्रोंसे देवोंका सम्बन्ध भी रहता है जैसे गायत्रीसे और बौद्धोंके त्रिशरणसे। सब पुराने मन्त्रोंमें गायत्री सबसे वड़ा श्रीर अति सुन्दर मन्त्र है। देववर्ग उसको जानते हैं और उस मन्त्रकी क्रियामें सहायक होते हैं। उस मन्त्रकी क्रिया तीनछोकोंमें, भू, सुवर् और स्वर्में होती है। एक-एक छोकके नाम लेने पर उस-उस छोकके देवता उस सहायताका काम करनेको दौड़ आते हैं जो जपनेवाला उन्हें देनेको तैयार होता है। इन देवोंमें कोई नीलकण्ठके और शक्तिके श्रयात् प्रथम किरण वर्गके होते हैं। इस मन्त्रका सम्बन्ध सूर्यसे, वास्तवमें सूर्य-मण्डल मध्यस्थ नारायणसे, है। गायत्री उश्चारणसे प्रकाशकी एक मोटी किरण स्थूल सूर्यसे (वह चाहे जिस दिशामें उस समय होवे) आकर मन्त्रोश्चारणकत्ताके ऊपर और भीतर गिरती है। यह प्रकाश सुवर्णमय रवेत रङ्गका रहता है। उसमें विद्युत्का नीला रङ्ग भी मिश्रित रहता है जो प्रथम किरणकी

क्रियामें बहुधा देखा जाता है। यह किरण जपकत्तीकी अन्त-रात्मामें पूर्णतया भरकर, उससे बाहर निकलकर तीन पहलूके काँचके सात रङ्गोंमें विभक्त हो सात वड़ी किरणोंके रूपमें जाती है, मानो मन्त्र वोलनेवाला स्वयं इस त्रिकोण काँच (प्रिप्म) का काम देता है। और किरए तो एक केन्द्र ( जैसे मस्तिष्क, हृदय ) से निकलकर गोलाईमें फैलती हैं पर ये किरणें मनुष्यके ओजसकी परिधिसे शंकुरूपमें निकलकर किसी केन्द्र पर इकट्टी होती हैं। ये किरणें चारों श्रोर नहीं फैलतीं पर श्रद्ध वर्तुलाकारमें, मन्त्र जपनेवालेके सामनेकी श्रोर फैल्ती हैं। ये शंकु-त्राकार किरणें पासमें आनेसे जैसे ठोस होती जाती हों, श्रौर श्रन्तमें एक बिन्दु पर पहुँचने पर अति प्रकाशमयी नोंकें वन जाती हैं। ये जीवितसी होती हैं ! यदि उनकी वाटमें कोई मनुष्य आ जावे तो वह विन्दु त्रावश्यकतानुसार शीव्र मुद्दकर उस मनुष्यके हृद्य और मस्तिष्कको छूता है जिससे ये दोनों थोड़े कालके लिये विशेष प्रकाशमय हो जाते हैं। प्रत्येक किरण इस प्रकारकी क्रिया वहुतसे मनुष्यों पर कर सकती है। एक मुण्डके ऊपर इस मन्त्रके प्रयोगसे देखा गया कि उस मुख्डको किरणोंने सात विभागमें विभक्त कर प्रत्येकने एक-एक भाग पर क्रिया की। अंग्रेजी भाषामें गायत्री मन्त्रका उचारण करनेसे और उसके अर्थ पर ध्यान रखनेसे भी यह फल पूरा-पूरा हुआ। पर संस्कृत भाषाके उचारणसे भाषाकी मधुरताके कारण एक सुन्दर रूप उन किरणोंके आस-पास थोड़ी देरके लिये बन गया पर किरणोंकी कियामें उससे कोई भेद नहीं हुआ।

वौद्धधर्मका त्रिशरण पढ़नेसे दूसरे प्रकारके देवता आते हैं। वे आश्चर्यकारक शान्ति और श्चानन्द अपने साथ छाते हैं। ये देवता कहीं दूरसे चलकर नहीं आते पर श्चावाहन करनेसे ईश्वरकी हँकी शक्तियाँ उन रूपोंमें प्रगट हो जाती है। किसी विचार पर ह़्तासे ध्यान करनेसे उसके भीतर स्थित शक्ति हमारे सामने प्रगट होगी। किसीकी भी सच्ची भक्तिसे तुरन्त ही आशीर्वाद आयेगा। प्रकृतिका नियम है कि क्रियाफल अर्थात् उत्तर अवश्य आवे। प्रार्थना और उसका उत्तर जैसे किसी सिक्षेके दो वाजू हैं। हमें इन वातोंकी ओर अपना मन फेरना चाहिये। अभी हम इनसे विमुख हैं। प्रकृतिकी शक्तियोंको सममकर अपनेमें उनकी क्रिया होने देनी चाहिये। उससे हमारी बहुतसी कृठिनाइयाँ दूर होंगी।

मन्त्र तो छोटा वलवान सूत्रसा रहता है। यदि हम छोगोंको कभी आज्ञा देनी पड़े, यदि मनुष्योंसे वात करते समय हम उनपर शीव्रतासे पूर्ण प्रभाव डालना चाहें तो हमको भी छोटे वलवान वाक्य वोलना चाहिये। वे सैनिक बाज्ञा या मन्त्रके समान हों खौर उनमें एक स्थान पर मनका भाव तीव्र हो जाय। जैसे यदि हम भयभीत मनुष्यको सहायता देना चाहते हैं तो हमें अपने मनमें कहना चाहिये, "मैं वलवान हूँ, वलवान, बलवान; मैं ईश्वरका अंश हूँ और ईश्वर शक्तिमय है सो मैं भी उस शक्तिसे भरा हूँ।" इस विचारको वार-वार कहनेसे ईश्वरीय शक्ति हमारे भीतरसे निकलकर ऊपर आ जायगी और हम दूसरोंको हिम्मत दे सकेंगे। ज्ञान एक शक्ति है। जीवनकी पवित्रता, चरित्र सङ्गठन और सेवापरायखता, इन गुणोंसे सब कुछ सघ जायगा। दीज्ञाके लिये ब्यावश्यक गुण पूर्ववत् ही हैं पर यह काल दीक्षाको वहुत सुलम कर देता है।

#### अध्याय ७

## प्रथम दीचा

एकमात्र दीक्षक । हिन्दूशास्त्रोंमें दीक्षा शब्दका अर्थ है वह जिससे ज्ञान दिया जाय और पापोंका क्षय हो (दीयते ज्ञानं श्लीयते पापं )। शास्त्रोंके अनुसार गुरु शिष्यके सव कोपोंको शुद्ध कर उसकी अन्तरात्माको ऊँची उठाकर उसमें अपनी शक्ति भरता है। श्वेतसंघका दीक्षित शिष्य वाह्य जगतके मनुष्यकी अपेक्षा बहुत विशेष दिव्य व्यक्ति है पर इस श्वेतसंघकी दीक्षाका महत्व इस बातसे है कि दीन्नित शिष्य अब महात्माओं के संघका एक सदस्य वन गया है और उससे एकत्वको प्राप्त हो चुका है। हरएक प्रह पर "सूर्य मंडल-मध्यस्थ" नारायणके मुखतार हैं जो उनके वाइसराय या राजप्रतिनिधिका काम करते हैं। धरती पर इन महान कर्मचारीको पृथ्वीनाथ, जगदीश्वर, महाप्रभु कहते हैं । ये इस संघके अधिपति हैं । इस संघके व्यक्तियोंका अपना श्रलग-अलग कर्तव्य काम तो नियत है ही पर यह सारा संघ एक बृहत् एकत्वप्राप्त व्यक्ति सा है, एक बलवान शस्त्र भी है जिसका वे महाप्रमु उपयोग कर सकते हैं। ईश्वरकी एक ऐसी गूढ़ योजना है जिसके कारण वह एकसे अनेक होकर (बहुस्यां प्रजायेय) अव फिर अनेकतासे एकत्वको प्राप्त हो रहा है। सारे भूलोकमें एकमात्र दीक्षक ये ही महाप्रभु हैं पर प्रथम और द्वितीय दीक्षाओं में उन्हें अधिकार है कि वे स्वयं दीचा न देकर किसी दूसरे महात्माको दीक्षा देनेके लिये वियुक्त करें। पर नया पद प्रदान करते समय उसे भी महाप्रभु

भगवानकी स्वीकृतिके लिये प्रार्थना करनी पड़ेगी । शिष्यके आध्यात्मिक जीवनमें यह बड़े महत्वका क्षण होता है।

श्वेतसंघ । दीक्षा पाकर शिष्य विशाल श्वेतसंघके चेतना-समुद्रसे एकत्व प्राप्त कर लेता है। इस एकत्वका अर्थ बहुत काल तक दीक्षितकी समममें न त्रावेगा। जैसे स्वीकृत शिष्य श्रपना विचार गरुदेवके विचारसे मिलाकर देख सकता था, वैसे ही दीचित श्रपना विचार श्वेतसंघके विचारसे मिलाकर देख सकता है। उससे श्वेतसंघकी चेतनाका अंश यथाशक्ति उसमें जा सकेगा। उसे ऐसे कोई विचार मनमें न त्राने देना चाहिये जो श्वेतसंघमें प्रवेश करके उनकी शांति अथवा चेतनामें चोभ उत्पन्न करें। श्वेतसंघकी शक्ति उसमेंसे उतनी ही बहेगी जितनी वह बहने देगा। वह उस शक्तिको जहाँ चाहे वहाँ भेज सकता है। शिष्यमें जितनी श्रद्धा होगी उतनीही शक्ति उसमेंसे बहेगी। वह श्वेतसंघसे एक है इसिलये उसके छिये सब कुछ संभव है। श्वेतसंघकी चेतना बड़े शांत प्रकाशमय समुद्रके समान है। हलकीसी लहर भी एक अंतसे दूसरे अन्त तक पहुँच जाती है। उसका पूरा भान तो निर्वाण लोकमें हो सकता है। जैसे शिष्य अपने गुरुदेवसे एकत्वको प्राप्त है वैसे ही श्वेतसंघ अपने अधि-पति भगवान सनत्कुमार से एक है; पर हर निर्णयमें हर एककी रायकी आवश्यकता पड़ती है हालाँकि अधिपतिके पूर्ण अधिकार हैं। समष्टित्व और व्यक्तित्व दोनों अपने उत्तम रूपमें यहाँ उपस्थित रहते हैं। यहाँ पर पूर्ण स्वतंत्रता रहती है।

अधः पतन । ऐसे संघमें प्रवेश करनेका सौभाग्य प्राप्त करके फिर किसीको असिद्ध न होना चाहिये या पीछे न हटना चाहिये; परंतु कभी-कभी यह संभावना हो सकती है यद्यपि ऐसा

प्रसंग बहुत कम आता है। "मार्गप्रकाशिनी"में कहा है कि बड़े जीव मोक्ष द्वारपर पहुँ चकर भी पीछे हट जाते हैं क्योंकि उनमें जवाबदारीके भारको संभालनेकी योग्यता नहीं है, क्योंकि वे आगे बढ़नेके योग्य नहीं हैं। जब किसी दीन्तित शिष्यका अधःपतन इस प्रकार होता है तब दुःखकी तरंग उस विशाल चेतनासमुद्रमें एक पारसे दूसरे पार तक फैल जाती है क्योंकि किसी दीक्षितको अपनेमेंसे अलग कर देना डॉक्टरके अंग काट देनेके समान है जिससे सबके हृदयको गंभीर वेदना होती है। यह विच्छेदन सर्व कालके लिये नहीं है; कभी, किसी प्रकार, कहीं, वह जीव फिर वापस छाया जायगा । जो श्रङ्खला उसके साथ वँधी है वह दूट नहीं सकती। उस शिष्यको किस दुःख श्रौर जाँचके मार्गसे चलकर इस संघकी प्राप्ति फिर होगी इसकी हम बहुत कम कल्पना कर सकते हैं। कभी दीचित शिष्य थोड़े ही कालके लिये पथन्नष्ट हो जाय तो संघ उसके चारो च्रोर एक कोषसा बना देता है जिससे वह संघकी शांतिमें वाधा न डाल सके। पर इसके पूर्व सारे संघकी सहायता उसके पास भेजी जाती है जिससे कि उसका पतन न हो।

दीक्षाकी विधि कई युगोंसे एकसी चली आती है पर उसमें क्रमका परिवर्तन हो सकता है। दीचा देनेवालेके शिष्यके प्रति आदेशका प्रथम भाग सदैव एकसा रहता है पर उसके द्वितीय भागमें उस शिष्यको व्यक्तिगत उपदेश मिलता है। कभी-कभी शिष्यके घोर शत्रुको उपस्थित करके शिष्यसे पृद्धा जाता है कि वह शत्रुको पूर्णतया क्षमा कर सकेगा या नहीं और यदि प्रसंग पड़ा तो उसे वह सहायता दे सकेगा या नहीं। शिष्यने जो कार्य किया हो उसके विषयमें भी पूछा जाता है और जिनको शिष्यने सहायता दी हो उनकी साक्षी भी ठी जाती है।

### एक प्रथम दीक्षाका वर्णन

इस साल (१९१५) वैशाख पूर्णिमा (बुद्धजयंती) का उत्सव २९ मईके सवेरे होनेवाला था। इसिछिये २७ मईकी रात्रिको दीक्षा देनेका निश्चय हुआ और हम सब लोगोंको तैयार रहनेका आदेश हुआ। यह दीक्षा भगवान मैत्रेय देनेवाले थे। इसिळिये यह विधि उनके वगीचेमें हुई । जब यही दीचा गुरुदेव मरु या कुशुमि देते हैं तो यह विधि उनके आश्रमके पासके पुलके निकट जो गुफा है, उसमें होती है। बहुतसे महात्मा इस समय पर उपस्थित हुए थे और जिनका नाम हम लोगोंको ज्ञात है वे भी उनमें शामिल थे। वायुमें गुलावके फूलोंकी सुगंध भरी थी। भगवान मैत्रेयके घरके सामने जो बड़ा वृक्ष हैं उसके चारोंओर संगमर्भरकी वैठक बनी है। भगवान उसपर विराजते थे। महात्मा लोग उनके दिल्लण वाम ऋर्द्धवर्तुलाकार धरती पर आसनों पर वैठे थे। संगमर्भरकी वैठक इनसे दो सीढी ऊँची थी और भगवान वैवस्वतमनु और महाचौहान भी उस पर विराजते थे। इस वैठकमें एक सिंहासनसा वना हुआ है और ये दोनों उसके एक एक तरफ वैठे थे। इस सिंहासनको दक्षिणामूर्त्तिका सिंहासन कहते हैं। शिष्य अपने पेशकरनेवाले महात्माके साथ इस बैठकसे नीचे भगवानके चरणोंके पास खड़ा था। इन दोनोंके नीचेके समतल पर कुछ दीक्षित और अदीचित शिष्य और कुछ अनुप्रह-प्राप्त दर्शक लोग, जिन्हें इस क्रियाका बहुतसा अङ्ग देखनेकी आज्ञा मिली थी, बैठे थे । उस कियाके कुछ गुप्त रखने योग्य अङ्ग सुवर्ण प्रकाशके परदेसे ढँक दिये जाते थे जिसमें उनको ये लोग न देख सकें। शिष्यको ऐसे प्रसंगपर लम्बी मलमलकी पोशाक पहननी पड़ती है। महात्मागण प्रायः श्वेत रेशम की चमकदार सुवर्ण जरीकी चौड़ी किनारवाली पोशाक पहिने थे।

बहुतसे देवगण ऊपर हवामें उपस्थित थे। उनसे निकलता मधुर संगीत वायुमें ज्याप्त था जिसके प्रभावसे किसी विचित्र श्रीर गृढ़ प्रकारसे शिष्यके गुण और भावी योग्यताका आभास मिलता था। दीचा विधि भर यह सङ्गीत जारी रहा। जो कुछ शिष्य बोलता था उसका यह श्रान्तरिक सङ्गीत समर्थन करता था। दीचाविधिके किसी-किसी प्रसंग पर यह सङ्गीत बहुत तीत्र भी हो जाता था। उससे बोलनेवालोंके शब्द विशेष सुन्दर सुन पड़ते थे। उससे सुननेमें बाधा नहीं होती थी। इस सङ्गीतसे शिष्यका भूत श्रीर भविष्य प्रगट होता है।

शिष्य अपने प्रस्तावक और समर्थकके साथ बीचमें खड़ा था। गुरुदेव महात्मा कुशुमि उसके प्रस्तावक थे और महात्मा जीसस समर्थक। भगवान मैत्रेयने मुस्कुराकर प्रथम प्रश्न पूछा — यह कौन है जिसे आप इस प्रकार हमारे समन्न लाये हैं ? हमारे गुरुदेवने उत्तर दिया, "यह एक प्रार्थी है जो विशाल भ्रातृसंघमें प्रवेश करना चाहता है।"

दूसरा प्रश्न हुआ 'क्या आप निश्चय कराते हैं कि वह प्रवेशके योग्य है ?' उत्तर:—'हाँ, मैं निश्चय कराता हूँ।'

'क्या त्राप उसे जिस मार्गमें वह प्रवेश करना चाहता है उसमें आगे बढ़नेमें सहायता देते रहेंगे ?'

प्रस्तावक ने कहा 'हाँ, मैं सहायता दूँगा।'

हमारे नियमोंके अनुसार हरएक शिष्यके विषयमें दो ऊँचे भाइयोंको ऐसा निश्चय दिलाना चाहिये। इस प्रार्थनाका समर्थन कोई दूसरा भाई करता है ?

अब समर्थक प्रथम बार वोले 'मैं समर्थन करनेको तैयार हूँ।'

दी चकने पूछा 'क्या आपके पास प्रमाण है कि यदि इसको नई शक्तियाँ दी जायँ तो वह उनको महत् कार्यके हेतु ही उपयोग करेगा?' गुरुदेव कुश्रुमिने उत्तर दिया,

'इस शिष्यका यह जीवन अभी थोड़े कालका ही है; पर फिर भी इसने बहुतसे अच्छे कार्य किये हैं और जगत्में हमारा काम करने लगा है। पुराने प्रीसके जन्ममें इसने मेरा तत्त्वज्ञान फैलानेके लिये और जिस देशमें वह रहता था उसके कल्याणके लिये बहुत प्रयत्न किया था।'

मास्टर जीससने भी कहा,

'बड़े प्रभाववाते दो जन्मोंमें उसने धैर्यसे मेरा काम किया था। राजाके जन्ममें उसने अन्यायको मिटानेका और ऊँचे आदर्शोंका प्रचार करनेका प्रयत्न किया था। साधुके जन्ममें उसने प्रेम, पवित्रता, और असांसारिकताका उपदेश दिया था। इस कारण मैं आज इसका समर्थन करनेको खड़ा हूँ।'

तब भगवानने उस वालकके प्रति मुस्कुराकर कहा, 'अभी तक रवेतसंघमें प्रवेश करनेकी प्रार्थना करनेवालोंमें इस वालककी ष्यायु सबसे कम है। क्या हमारे संघका कोई भी भाई, जो वाह्य जगत्में रहता हो, हमारी ओरसे इस बालकको ऐसी सहायता और सलाह देनेको तैयार है जिसकी उसके छोटे स्थूल शरीरको खावश्यकता हो?'

पीछे खड़े शिष्योंके अध्यासेसे सीरियसने आगे बढ़कर कहा, 'भगवन् ! जहाँतक अक्षरे हो सकेगा, और जबतक मैं उसके शरीरके निकट हूँ, मैं उसे अक्षरांकि सहायता बड़ी प्रसन्नतासे दूँगा।'

तब भगवानने कहा, 'क्या तुम्हारे हृदयमें इस छोटे प्रार्थीके प्रति सचा भ्रातृश्रेम सरा है कि तुम उसे आवश्यक सलाह दे

सकोगे ?' सीरियस ने उत्तर दिया; 'हाँ, भरा है।' भगवानने अव स्वयं शिष्यसे पूछा 'क्या तुम इस भाईसे प्रेम करते हो जिससे आवश्यकता पड़ने पर तुम उससे खुशीसे सहायता ले सको ?' उसने उत्तर दिया 'वास्तवमें मैं अपने पूर्ण हृदयसे प्रेम करता हूँ क्योंकि उनकी सहायताके विना मैं यहाँ आ ही नहीं सकता था। अगवानने गभीर होकर अपना सिर कुकाया। महात्माजीने शिष्यको दीक्षकके सामने खड़ा किया। अगवानने अपनी दृष्टि उसपर जमाकर कहा, 'क्या तुम उस श्वेतसंघमें प्रवेश करना चाहते हो जो अनादि कालसे अनन्त काछ तक वना रहता है ?' वालकने उत्तर दिया, 'भगवन् ! यदि आप सममते हैं कि इतनी छोटी वयमें मैं इस योग्य हूँ तो मैं प्रवेश करना चाहता हूँ।' दीक्षकने पूछा 'क्या तुम जानते हो कि. इस आरहसंघका उद्देश्य क्या है ?' प्रार्थीने उत्तर दिया 'उसका उद्देश्य ईश्वरकी इच्छाके त्रानुसार कार्य करनेका है, उस ईश्वरकी कल्पना या योजनाको पूरा करना है। विकासक्रम वह योजना है।' तब भगवानने कहा 'क्या तुम यह प्रतिज्ञा करोगे कि श्रवसे अपना सारा जीवन और श्रपनी सारी शक्ति इस कार्यमें लगाओगे और जगत्के कल्याणार्थ अपनेको पूर्णतया भूछ जात्रोगे ? जैसे ईश्वर प्रेममय है वैसे तुम अपने जीवनको बिलकुछ प्रेममय बना दोगे ?' शिष्यने उत्तर दिया 'मैं अपने गुरुदेवकी सहायतासे अपनी यथाशक्ति ऐसा करनेका प्रयत्न करूँगा।' 'जिन बातोंको गुप्त रखनेके लिये तुमसे कहा जाय उन्हें तुम गुप्त रखनेकी प्रतिज्ञा करते हो ?' शिष्य ने कहा, 'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।'

इससे आगे शिष्यसे भुवर्लोकके ज्ञान श्रौर वहाँके कार्यके विषयमें साधारण प्रश्न पूछे गये। बहुतसे एस्ट्रल पदार्थ उसे दिखाकर पूछा गया कि ये क्या हैं। उसे जीवित और मृत मनुष्योंकी वासना या एस्ट्रल देहोंको पहिचानना पड़ा। उसे मनुष्य और मनुष्यकी आकृतिके विचार रूपमें, तथा महात्मा और उनकी विख्कुल ठीक नकलमें, पहिचान करनी पड़ी। तब दीक्षकने उसे बहुतसी एस्ट्रल घटनाओंको दिखाकर पूछा कि इनमेंसे प्रत्येकमें किस रीतिसे सहायता दोगे और उसने जैसा बना वैसा उत्तर दिया। अन्तमें भगवानने मुस्कुराकर कहा, 'उत्तर संतोषजनक हैं।'

फिर दीक्षकने अपना गम्भीर और सुन्दर आदेश दिया। इसका प्रथम भाग तो सदैव एकसा ही रहता है। जगत्में रवेतसङ्घका कार्य, उसके प्रत्येक व्यक्तिकी जवाबदारी है क्योंकि जगत्के दुःख-भारको उठानेमें हर एक सदस्यको अपना भाग लेना पड़ता है, ये सब वातें सममाई गई। एक ही श्वेतसङ्ख एक नियमके और एक अधिष्टाताके आधीन है और प्रत्येक सदस्यका कर्तव्य है कि सेवासे और अपनी सळाइसे उसकी सहायता करे। प्रत्येक सदस्यको चाहिए कि अपना स्थानीय ज्ञान और अपनी विशेष योग्यता सङ्घकी सेवामें अर्पण करे। सङ्घके महाप्रभुकी आज्ञा अनुल्लंघनीय है पर कोई भी महत्वका कार्य सङ्घके विलकुल नवीन सद्स्यकी सम्मति विना भी नहीं किया जाता। जो दीक्षित जहाँ हो वहाँ वह स्वेतसङ्घका प्रतिनिधि है। प्रत्येकने शपथ ली है कि सङ्घ जहाँ भेजे वहाँ वह जायगा और जो काम बताया जाय उसे करेगा। हर एक सदस्यको याद रखना चाहिये कि वह एक केन्द्र है जिसमेंसे महाप्रभुकी शक्ति जगत्की सहायतार्थ भेजी जा सकती है। कोई भी पुराना भाई उसे अपना आशीर्वाद भेजनेके लिये नलिका बना सकता है। इसितये प्रत्येक नवीन भाईको इस प्रकार उपयुक्त बननेके लिये तैयार रहना चाहिये। मालूम नहीं कब उसका काम पड़े। सदस्यका जीवन दूसरोंके हेतु सदैव लगा रहे। उसे दूसरोंकी सेवाके अवसरकी ताकमें रहना चाहिये और ऐसी सेवामें उसे महान् आनन्द मिलना चाहिये। सङ्घकी इज्जत उसके हाथमें है, यह उसे याद रखना चाहिये। उसके किसी शब्द या कार्यसे जगत्के समन्न उसमें धव्या न छगे या जगत् उसे लेश मात्र कम उन्न न सममे।

धारामें प्रवेश करनेसे, स्नोतापत्ति बननेसे, उसके लिये संसारकी अड़चनें और कलह कुछ कम न हो जायँगी; उसे विशेष प्रयत्न करना पड़ेगा पर अब उसमें विशेष शक्ति भी रहेगी। जैसी शिक बढ़ेगी वैसीही उसकी जवाबदारी भी बढ़ेगी। उसके यह पद पानेसे वह नहीं बढ़ा, पर उसके द्वारा मनुष्य जाति थोड़ी आगे बढ़ी है; इसकी उसे खुशी होनी चाहिये। संघका आशीर्वाद उसके साथ सदैव बना रहेगा पर वह उसे जितना दूसरोंके पास पहुँचायेगा उतना अधिक ही वह उसके पास उतरेगा; यही सनातन नियम है।

आदेशका यह अंश सदैव दिया जाता है । शिष्यको व्यक्तिगत उपदेश देते हुए दीच्चकने कहा,

"इस महान् पद्को पाकर उसका भार सहनेके लिये तुम्हारा शरीर श्रभी बहुत छोटा है पर इस बालकपनसेही तुमको बहुत अच्छा मौका मिला है। पूर्वजन्मोंके श्रात्मत्यागके कमेंसे वह तुम्हें मिछा है। तुम ऐसा प्रयत्न करो कि इस देहमें तुम उसके योग्य बने रहो। हम आशा करते हैं कि तुम यह सावित कर दोगे कि इतनी छोटी वयमें तुमको संघमें शामिछ करनेमें हमने बुद्धिमानीका काम किया है। हम सबमें जो पूर्ण एकत्व है उसे याद रखो ताकि उसका महत्व तुम्हारे द्वारा कम न हो।

इतनी जल्दी आरम्भ करके तुम इस जन्ममें बहुत दूर तक जा सकते हो। मार्गकी चढ़ाई खड़ी है पर तुम्हारा प्रेम खौर तुम्हारी शिक्त उसके लिये काफी है। ज्ञानको बढ़ाखो, कोषोंका पूर्ण संयम सीखो, सावधानता, शीघ्र निर्णय, गहरी दृष्टि, इनको बढ़ाखो। अभी तक तुम्हारी बुद्धि प्रेमकी पूर्णतासे हुई है; उस प्रेमको सदैव बढ़ाते रहो और वह तुम्हें अंत तक पहुँचा देगा।" तब भगवानने दूसरे महात्माखोंकी खोर फिर कर कहा 'मुझे यह प्रार्थी संतोषजनक दिखता है। क्या आप सब सम्मत हैं कि वह हमारे संघमें लिया जाय' सबने कहा, 'हम सम्मत हैं।'

तव दीचक अपने सिंहासनसे उठे और शंबालाकी ओर मुँह फेरकर जोरसे बोले:

'हे प्राण, प्रकाश और गौरवके प्रभु ! क्या मैं यह कार्य आपके नाम पर और आपके निमित्त करता हूँ ?'

इसके उत्तरमें उनके सिर पर ज्वलंत तारा चमका जिससे
महाप्रभुकी सम्मित प्रगट होती है। सबने उसके सामने सिर
मुकाया। देवोंका वाह्य संगीत राजयुद्ध-यात्राकीसी विजय-घोषणा
करने लगा। इस संगीतकी तालमें, दोनों महात्माओंके नेतृत्वमें
शिष्य आगे बढ़ा और उनके सामने घुटने टेककर खड़ा हुआ,
जो इस समय उन महाप्रभुके प्रतिनिधि थे जिनकी आज्ञासे ही
इस संघमें प्रवेश हो सकता है। अत्युज्वल प्रकाशकी रेखा
उस तारेसे दीचकके हृद्यको और वहाँसे शिष्यके हृद्यको स्पर्श
कर रही थी मानो बिजली स्थिर हो गई थी। इस शक्तिके
अति महान प्रभावसे शिष्यके मीतरका छोटासा चेतनाका रजत
तारा, जो आत्माका नीचे लोकोंमें प्रतिनिधि है, प्रदीप्त और

प्रकाशमय होकर इतना फूल गया कि इससे उसका सारा कारण-देह भर गया और एक क्षणके लिये आत्मा (मोनड) और कारण-शरीरस्थ जीवात्मा (ईगो) मिलकर एक हो गये। महात्मा पद पाने पर यह एकत्व चिरस्थायी हो जाता है। भगवानने शिष्यकें सिर पर हाथ रखकर और उसका सच्चा नाम लेकर कहा "जिनका तारा हमारे ऊपर चमक रहा है उन एकमात्र दीच्चकके नाम पर मैं तुमको अनंतजीवनके आतृसंघमें प्रहण करता हूँ। तुम उसके योग्य और उपयोगी सदस्य बनो। अब तुम सदैवके छिये सुरिच्चत हो। तुमने नदीमें प्रवेश किया है। तुम शीब्रही दूसरे किनारे पर पहुँचो!"

देवोंके मधुर वाद्यसंगीतने वायुमंडलको शक्ति श्रौर आनन्दसे भर-सा दिया। मनु भगवान और महाचौहानने जो आशीर्वाद दिया उसके रंगोंकी सुन्दरतामें दीचक, शिष्य और उसके समर्थक सब प्रायः ढँकसे गये। भगवान बुद्धका सुवर्ण प्रकाशरूप आशीर्वाद भी उनके ऊपर फैल रहा था क्योंकि एक और मनुष्यने मार्गमें प्रवेश किया है। एक क्षणके लिये ऐसा जान पड़ा कि उस चमकते रजत तारेने दीचक और नये भ्राताको अपने अति प्रदीप्त प्रकाशमें ढँक लिया। जब वे लोग उस प्रभामेंसे निकले तो नये दीक्षितकी पोशाक दूसरे दीक्षितोंके समान श्वेत रेशमकी हो गई थी। दीक्षकने अपने कारणदेहको प्रकाशमय बनाया श्रीर नये दीक्षितका कारणदेह भी उसके प्रत्युत्तरमें चमकने लगा । यह दृश्य अतिमोहक और सुन्दर था। सुवर्णमय हरा प्रकाश उससे निकलता था। आत्मा (मोनड) कारणदेहके स्थायी असुमें प्रकाशका बिन्दुसा दिखता है। वह इस समय फूळकर अधिक प्रकाशमय हो गया और सारे कारणदेहको उसने भर दिया आत्मा (मोनड) इस समय थोड़ी देरके लिये अपने

कारणशरीरस्थ अंश (इगो) से मिलकर एक हो जाता है और ये प्रतिज्ञाएँ करता है। एस्ट्रल शरीर पर भी विचित्र प्रभाव पड़ता है। उसकी सम स्थिति और स्थायित्वको बदले बिना उसे इस प्रकार मोंका दे दिया जाता है जिससे उसमें पूर्वापेक्षा बहुत तीव्रता आ जाती है। पर वह देह अपने स्थामीके अधिकारके बाहर नहीं जाती और न अपने स्थानको त्यागती है। दीच्चक अपनी एस्ट्रलदेहके कंप नये शिष्यकी देहमें उत्पन्न करके इस आंदोलनको आरम्भ करते हैं। इसीके साथ-साथ उसे स्थिर भी कर देते हैं जिससे उसमें कोई हिलना या संज्ञोभ तो नहीं होता पर कंपकी विशेष योग्यता आ जाती है।

इतना हो चुकने पर दीचकने नये भ्राताको ज्ञानकी छुंजी दी और बताया कि अपरिचित महात्माको भुवर्लोकमें किस प्रकार पहिचानना चाहिये। उन्होंने छुछ पुराने शिष्योंको दीव्वितको बुद्धिलोकका आवश्यक अनुभव करानेका आदेश दिया। सव एकत्रित महात्माओंने नवदीक्षितको आशीर्वाद दिया और इस महान् विधिका अंत हुआ। तव नवदीिच्चतने संघका आशीर्वाद जगत्को दिया और इस प्रकार उसने नई पाई बलवती शक्तिका प्रथमबार उपयोग किया । इस आशीर्वादके जगत्में और जगत्के चारों ओर प्रसार होने पर हरएक वस्तुमें नया जीवन आया, प्रत्येक वस्तुमें थोड़ी नई शक्ति, थोड़ी नई सुन्दरता आई और जगत्के गंभीर आनन्द और उपकारकी प्रतिध्वनिसे वायुमंडल भर गया। एक नई कल्याणकारी शक्ति प्रगट हुई। नये व्यक्तिके रवेतसंघमें प्रवेश करने पर पृथ्वी आनन्द मनाती है क्योंकि उसका उद्घार रवेतसंघसे ही होगा। इस प्रकार इस आश्चर जनक विधिकी सम प्त हुई और ज्वलंत तारा अदृश्य हो गया। सब महात्माओंने नवदीचितको बधाई दी।

मि० लेडबीटरको आज्ञा हुई थी कि दूसरी रात्रिको ननदी चित को जगत्के महाप्रभु (भगनान सनत्कुमार) के समन्न पेश करें। यह एक असाधारण सम्मान था और प्रथम दीक्षाका अंग नहीं था। यह बहुधा तृतीय दीचाके साथ होता है। नियत समय पर शंवाला जाने पर इनलोगोंका बड़े कमरेमें स्वागत हुआ। महाप्रभु सनत्कुमार भगवान बुद्ध और भगवान मैत्रेयसे बातें कर रहे थे। भगवान मैत्रेयने नवशिष्यको "हमारा नया माई और सद्व चमकता प्रेमका तारा" कहकर संबोधित किया और उसे पेश किया। उस बालकके उनके सामने घुटना टेकने पर भगवान सनत्कुमार मुस्कुराये। बालकने हाथ जोड़े, भगवानने उनको अपने दाहिने हाथमें पकड़कर उससे कहा:

"मेरे पुत्र ! तुमने अच्छा काम किया है और मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। यही कहनेको मैंने तुम्हें यहाँ आज बुलाया है। इससे भी विशेष उन्नति साधो। मैं आशा करता हूँ कि मेरी नई उपजातिमें तुम बड़ा कार्य करोगे। कुछ घंटों पूर्व मेरा तारा तुम्हारे ऊपर दृश्य रूपमें चमका था। यह यार रखो कि न दिखनेपर भी वह तुम्हारे ऊपर सदैव उसी प्रकार चमकता रहेगा। जहाँ वह चमकता है वहाँ शक्ति, शुद्धि और शांति रहता है।"

भगवान बुद्धने नव शिष्यके सिर पर हाथ रखकर कहा, "मैं भी तुम्हें अपना आशीर्वाद और वधाई देता हूँ। मैं सममता हूँ कि तुम्हारी अभीकी शीघ उन्नति आनेवाली उन्नति की सूचक है और भविष्यमें मैं कीर्तिमय रहस्यके भ्राताके रूपमें, आध्यात्मिक कुलके सदस्यके रूपमें तुम्हारा अभिनन्दन करूँगा। इस कुलवालोंके द्वारा जगतोंमें प्रकाश आता है।"

पीछे खड़े तीन कुमारोंने भी उस घुटना टेके, वाणीरहित पर प्रेम और पूज्यभावपूर्ण बालककी ओर मुस्कुराकर देखा। शिष्योंने साष्टांग प्रणाम किया; महाप्रभुने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया और ये लोग लौट त्राये।

क्रियाका काल : इस क्रियाका समय शिष्यकी योग्यता-नुसार घटता बढ़ता है। पूर्वमें तीन दिन रात्रि लगते थे। एक वार दो रात्रि और एक दिन लगे थे। बहुतोंमें प्रधान किया एक रात्रिमें ही पूर्ण हो जाती है और कुछ अप्रधान भाग गुरुदेवोंके ऊँचे शिष्योंको करनेको कह दिया जाता है। कुछ बुद्धिलोकका अनुभव भी दीचाके लिये अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिये; नहीं तो उस लोकके लायक कुछ मिलनेवाले उपदेश शिष्यकी समममें न आवेंगे। बहुतसे थियाँसोफिस्टोंने भुवर्लोकका कार्य करना श्रौर भुवर्लोकका विधिवत ज्ञान पूर्वमें ही प्राप्त कर लिया होता है जो पूर्व कालमें इस समय सिखाया जाता था। जब दीचकको यह निश्चय हो जाता है कि प्रार्थीकी कुछ बुद्धिलोक की उन्नति हो चुकी है तब उस लोकका अनुभव करानेके लिये पुराने शिष्योंको अक्सर आदेश होता है। असल दीचाकी कियामें छः घंटेसे कुछ कम समय लगता है। पर इसके सिवाय आरंभ और अन्तमें भी कुछ समय शिष्यके साथ खर्च होता है। दीचाके वाद महात्मागण भी अपनी वधाई देते हैं और सभी कुछ कुपापूर्ण शब्द कहते हैं। इस प्रसंग पर वे अपने शिष्योंको कुछ आदेश भी भेजते हैं। विशेषकर नवदीचितोंके लिये यह बड़े उत्सवका समय होता है। जब कोई नवदीक्षित होता है, सदैवके िलये सुरिक्षत हो जाता है, तब उस जीतमें सबकी जीत होती है।

### पुत्रत्व

गुरु शिष्यका सम्बन्ध आगे बढ़ने पर विशेष घनिष्ट होता जाता है। दीचाद्वारके पास पहुँचनेके लगभग गुरुदेव अपने शिष्यसे विशेष घनिष्टताका सम्बन्ध स्थापित करते हैं जिसे पुत्रत्व कहते हैं। शिष्य अब गुरुदेवका पुत्र हुआ। सम्बन्ध अवः केवल नीचे मनसे ही नहीं है पर शिष्यका कारणशरीरस्थ जीवातमा (ईग्ये) भी गुरुदेवके कारणशरीरस्थ जीवात्मामें आदृत्त कर छिया जाता है। अब गुरुदेव अपने और शिष्यके वीचमें परदा नहीं डाळ सकते । शिष्य तो अपनी छोटी योग्यतानुसार गुरुके प्रति प्रेम वर्षावेगा ही, पर गुरुदेवकी घोर प्रेमवर्षाका हिसाव ही नहीं है। जगत्का प्रेम घटता बढ़ता रहता है। प्रेमपात्रकी उदासीनतासे या निर्देयतासे उसका प्रभाव मन्द भी हो जावे, पर ऐसा भी सच्चा और गहरा प्रेम होता है जो किसी प्रकार हिल नहीं सकता, जिसे प्रत्युत्तरकी जरा भी परवाह नहीं है, जिसे प्रेमपात्रके विस्मरण, उदासीनता, श्रौर अपात्रता याः अयोग्यताकी थोड़ी भी चिन्ता नहीं है, जिसे उस प्रेमपात्रके अपनेको किसी प्रकार दूषित करने पर या कोई अपराध करने पर भारी परिताप और मनोवेदना होगी पर प्रेम उस कारण कुछ भी न घटेगा, जो प्रेम अपनी गाढ़ता प्रेमपात्रके कुछ भी करने पर न घटायेगा।

ईश्वरका इसी प्रकारका प्रेम अपने जगत्के प्रति है श्रीर गुरुदेवका अपने शिष्यके प्रति होता है। इस पूर्ण और अखंडनीय एकतासेही गुरुदेव अपने शिष्योंको अपना निज स्वभाव, उनकी ले सकनेकी योग्यतानुसार दे सकते हैं। इस प्रकार आत्मसमर्पण करके ही गुरुदेव शिष्यको उतना अधिक दे सकते हैं जितना शिष्य अपने गुरुसे पा सकता है। इसलिये सत्यतः यह कह सकते हैं कि गुरु शिष्यके हाथ विकजाता है। ज्ञणमात्रके लिये सोचिये कि इससे हमलोगोंकी जवाबदारी कितनी कठिन हो जाती है।

ऐसा प्रेम कभी-कभी वाह्य जगत्में भी देखनेमें आता है पर यहाँ भी ऊँचा व्यक्ति नीचके हाथ विक जाता है, ताकि परम प्रेम परम आत्मसमर्पण या परमत्याग भी वन जाता है। इस परम आत्मसमर्पणसे जगत्के और पदार्थोंकी श्रपेक्षा गहरा आनन्द प्राप्त होता है। यही प्रेम ईश्वरप्रेमसा है।

प्रत्येक स्वीकृत शिष्यका अधिकार और कर्त्तच्य है कि अपने गुरुदेवके नाम पर आशीर्वाद दे। ऐसा करनेसे गुरुदेवकी शिक्तका बड़ा विचिन्न प्रवाह बहेगा। किसीके घरमें प्रवेश करते समय उसे मनमें आशीर्वाद देना चाहिये कि गुरुदेवका आशीर्वाद इस घर पर तथा यहाँके रहनेवालों पर वरसे। गुरुका पुत्र विशेष शांति और उनकी उपस्थितिका आशीर्वाद पहुँचा सकता है। गुरुका पुत्र श्वेत-संघका सदस्य है या शीन्न ही होगा; उस है सियतसे वह श्वेत संघका आशीर्वाद भी दे सकेगा। लेडवीटर साहवके पड़ोसमें जंगलके अधिपति उनके परिचित एक देव थे। उनको एक दिन इन्होंने अपने गुरुदेवका आशीर्वाद दिया। उस देवने सिर मुकाकर अति मान, भक्ति और शुद्धतासे उसे महण किया। दूसरे दिन इन्होंने उसे श्वेत-संघका आशीर्वाद दिया, वह और उसकी हहकी प्रत्येक वस्तु और जीव उससे ऊँचे उठ गये और प्रकाशमय हो गये। इनके महाप्रमु उसके भी महाप्रमु हैं।

पूर्वजन्मों में और कदाचित् इस जन्ममें दूसरों को सहायता देनेका फल दीचा है। शिष्यको अपनी प्रतिज्ञा हर क्षण अपने ध्यानमें रखनी चाहिये। दीक्षितकी गढ़तीका कर्मविपाक श्रौर मनुष्योंकी श्रपेचा विशेष भयंकर होता है। उसे प्रत्येक सेवाके श्रवसरका छाम लेकर जगत्की सहायता करनी चाहिये। देवेत-संघमें प्रवेश करनेसे दीचित सारी मनुष्य-जातिका भाई बन

जाता है। उसका कर्तव्य है कि वह प्रेम और आशीर्वाद वर्षाता रहे। उसे जगत्के मानापमानकी परवाह नहीं है। उसे श्वेतसंघकी रायका माहात्म्य है। उसे सदैव परहितचिंतनमें लगे रहना चाहिये, न कि अपने हितचिंतनमें।

-:0:-

#### अध्याय ८

# कारगाश्चरीरस्थ जीवात्मा।

छोटे उपनिषदों और तंत्रोंमें मनुष्यके भीतर आत्मा, अन्त-रात्मा श्रीर परमात्मा कहे हैं। थियाँसोफीमें नीचे मन और एस्ट्रल देहमें कार्य करनेवाला देहाभिमानी जीव (पर्सनालिटी), ऊँचे मन या विज्ञानमय कोषमें काम करनेवाला जीवात्मा, (या ईगो) और निर्वाण और परानिर्वाण लोकमें स्थित आत्मा ( मोनड ) कहे हैं, पर इनको स्पष्ट रूपसे सममना आवश्यक है। थियाँसोफीकी पुस्तकोंमें 'परमात्मा' शब्दका व्यवहार मनुष्यके लिये नहीं होता। कोई-कोई तंत्र परमात्मासे परे ज्ञानात्मा भी बताते हैं। सूर्य-मण्डलके वाहर और भीतरकी प्रकृतिकी अवस्थाएँ एक दूसरेसे बहुत कुछ भिन्न हैं। हर एक प्रहकी प्रकृति भी सूर्यमंडलकी प्रकृतिसे विशेष भागमें भिन्न रहती है। सूर्यमंडलकी प्रकृति सात खण्डोंमें, लोकोंमें, भूमिकाओंमें विभक्त है जिनके नाम ये हैं: (१) स्थूल या मूलोक, (२) मुवर् या एस्ट्रल, (३) स्वर् या मनोलोक, (४) वुद्धिलोक-अंतःस्फूर्तिका, (४) निर्वाण लोक, (६) परानिर्वाण या अनुपादक लोक, (७) महापरानिर्वाण या श्रादिलोक। हर एक लोककी प्रकृति सात श्रंतर्भूमिकाओं में, अन्तर्खण्डोंमें विभक्त है जैसे भूलोकके ठोस, तरल या द्रव,

वायुरूपी और ईथरकी चार छोटी अवस्थाओंवाले पदार्थ । हर एक प्रहके हर खण्डकी सप्तम या अणुवाली सबसे ऊँची अन्तर:अवस्था सब प्रहोंमें, सारे सूर्यमण्डलमें एक सी है । यदि हमारे सूर्यमण्डलके सात खण्डोंकी सात अति ऊँची या अणुरूपी अंतर अवस्थाएँ लेवें तो वे मूर्यमण्डल भरमें एकसी होकर, सूर्यमण्डलके बाहरके विश्वके अंतिम स्थूल खण्डकी, विश्वप्राकृतिक खण्डकी, अंतर अवस्थाएँ हैं । जिनराजदासजीका कहना है कि इनमेंसे प्रत्येक अणु-अन्तर-अवस्था अपनेसे मिलते सूर्यमण्डलसे बाहरके विश्वके खण्डकी अन्तिम नीची सातवीं अन्तर-अवस्था रहती है । जैसे सूर्यमण्डलस्थ मनोलोककी प्रथम अंतर्थंड या अणु अवस्थाकी प्रकृति वाह्यविश्वके मनोलोककी अंतिम या सातवीं अंतर अवस्थाकी प्रकृति वाह्यविश्वके मनोलोककी अंतिम या सातवीं अंतर अवस्थाकी प्रकृति होगी।

आत्मा और जीवात्मा: हमारी आत्मा (ऊपर लिखा परमात्मा = मोनड) ईश्वरह्मी अग्नि की एक चिनगारी है। उसका असल स्थान किस लोकमें है यह हमें मालूम नहीं है, क्योंकि वह हम लोगोंकी पहुँचके बहुत परे है। ईश्वरने उसे अपनेसे बहुत नीचे लोकमें, पर हमसे बहुत ऊँचेमें, जन्म दिया था। उसका सबसे नीचा हम, उसकी छाया, सूर्यमण्डलके बाहरके सबसे नीचे खण्ड तक, प्राकृतिक खण्ड तक, उतरती है। वही हमारे अनुपादक लोकमें त्रिमूर्ति-हमसे दिख पड़ती है।

ईश्वरका अंश ईश्वरके छोकसे बहुत नीचे लोकमें जन्मः पाकर बहुत संकुचित हो जाता है, उसकी शक्तियाँ कम हो जाती हैं। उसी प्रकार यह श्रात्मा (मोनड) अपना थोड़ासा अंश नीचे खएडोंमें भेजता है, जो ऊँचे मनोलोकका कारणशरीरस्थ जीवात्मा (ईगो) बन जाता है। अब उसके बन्धन बहुत बढ़ गये और शक्तियाँ और भी बहुत घट गई। पर यह जीव

भी मुवर्लोक और भूलोकमें काम नहीं करता। वह स्वयं अरूप खण्डसे नीचे नहीं उतर सकता। इस कारण वह अपना बहुत थोड़ा छंश भू, मुवर् और नीचेके मनोलोकमें भेजता है। इसे देहाभिमानी जीव (पर्सनालिटी) कहते हैं। यह चेतनाका अन्तिम टुकड़ा दिव्यदृष्टिवालेको मनुष्यमें चलता हुआ दिखता है। हिन्दूशास्त्रोंमें उसे अङ्ग्रष्टमात्र पुरुष कहा है। पर बहुतोंको वह एक तारेके रूपमें दिखता है। अपनी अपनी किरण और मनुष्य-जातिके अनुसार वह तारा कहीं हृदयमें, कहीं मस्तिष्कमें, कहीं गलेमें, या सूर्यचक्रमें रहता है। पाँचवीं मनुष्य-जातिकी पाँचवीं उपजातिवाले उसे प्रायः सदैवही सिरमें, आज्ञाचक्रमें, रखते हैं। यह तारा नीचे कोषोंमें कारणशरीरस्थ जीव (ईगो) का प्रतिनिधि है। इन कोषोंमें कार्य करने पर उसे देहाभिमानी जीव (पर्सनालिटी) कहते हैं। इसको उसके मित्र भूलोक पर जानते हैं।

इस देहाभिमानी जीवकी सारी शक्ति और जीवन कारण-शारीरस्थ जीव (ईगो) से त्राते हैं और यह उसका अङ्गमात्र है। पर अपने नये सहवासमें वह अपनेको विलकुछ त्रालग मानने छगता है। ऊँचे जीवसे मिछते रहनेको रास्ता भी वना है, जिसे यहाँ त्रांतःकरण कहते हैं; पर वह इस रास्तेका उपयोग नहीं करता है। साधारण मनुष्यमें यह देहाभिमानी जीव ही मनुष्यको चलाता है और कारणशरीरस्थ जीव वहुत कम, और कम त्रांशमें, हस्तचेप करता है। मनुष्यको आरम्भमें तो इस रास्तेको साफ़ कर देना चाहिये ताकि नीचा मन ऊँचे मनका त्रानुकरण कर, पवित्र हो जाये; शरीरपर ऊँचे मन (जीवात्मा) का साम्राज्य जम जाये, और नीचे मनमें कोई विचार या इच्छा उससे भिन्न न रह जाये। नीचा मन नीचे छोकोंमें ऊँचे मनका रूपमात्र रह जाये। श्रशिक्षत मनुष्यमें इन दोनोंमें कुछ परस्पर किया नहीं होती। दीचितमें ऊपरवालेका पूर्ण प्रभाव नीचेपर पड़ता है। सब मनुष्योंमें इन दो अन्तिम दशाओंके बीच की दशाएँ रहती हैं। जीवात्मा (ईगो) का भी विकास हो रहा है, पर हर हालतमें देहाभिमानी जीव श्रात्मा (मोनड) का ही अंश है पर कारण-शरीरमें (मोनड) पूर्णतया कियाबान है। देहाभिमानी जीवमें इसका बहुत ही थोड़ा अंश रहता है। कारणशरीरस्थ जीवका विकास इसमें है कि उसमें आत्मा (मोनड) के सब गुण श्रीर शक्तियाँ कतक उठें। जीवात्माको अपने आत्मा (मोनड) के साथके सम्बन्धका मान रहता है।

जीवात्माका लोक: कारणशरीरस्य जीवात्मा अपने लोकमें कई दिशाओंमें क्रियावान है और स्वतन्त्र उन्नति करता रहता है। स्थूल, एस्ट्रल शरीर और मनोमय कोप द्वारा केवल थोड़े सद्गुणोंकी ही उन्नति हो सकती है। इन सद्गुणोंसे विकसित कारणशारीरमें उस जीवके गुण बहुत प्रगट होने लगते हैं श्रीर कारणशरीर वढ़ने लगता है, यहाँ तक कि वह मनुष्य सैकड़ों और हजारों मनुष्योंको अपने कारणशरीरके भीतर रखकर उनका बहुत कल्याण कर सकता है। हमारे श्ररूपखण्डके जीवका, अपने साथियोंमें तथा अरूप देवोंमें और दूसरे देवोंमें जो जीवन है, उसका हाल हमें कुछ नहीं माल्म। विचार यहाँ रूप नहीं धारण करता, पर विजलीकी चमक सा एक मनसे दूसरे मनको सीधा जाता है। यह शरीर मनुष्ययोनिमें आनेके समयसे दीक्षा तक बना रहता है, वीचमें नष्ट नहीं होता। यहाँ वस्तुओंका वाह्य रूप नहीं, पर निज रूप, उनका श्रसल सत्य, दिख पड़ता है। यहाँ कार्य-कारण एक रूप हैं जैसे एक मुद्राके दो मुँह। यहाँ समूर्त्त मिटकर अमूर्त्त रह जाता है। यहाँ एक प्रकारकी सब वस्तुओं के भिन्न-भिन्न रूप नहीं हैं पर उन सवमें जो एक विचार है वही यहाँ है। भूलोकमें जो एक तत्त्व-दर्शन है, जिसके लिखनेको कई पुस्तकें चाहिये, वह यहाँ एक विचार, एक पदार्थ है जिसे कार्डके समान देखल पर डाल सकते हैं। जो जीव महात्मा (अशेख) पदके निकट पहुँच रहा है उसमें और वड़े देवों में बहुतसे गुण एकसे रहते हैं। उसमें से बड़ी-बड़ी आध्यात्मिक प्रभावकी शक्तियाँ वहती हैं।

साधारण संसारी मनुष्यके स्थूल जीवनमें कारणशरीरस्थ जीवात्मा (ईगो) को ध्यान देने लायक बहुत कम बातें रहती हैं। कभी-कभी कोई ऐसी महत्त्वकी वात त्रा जाती है जिसकी ओर उसका ध्यान चणमात्रके लिये खिंचता है। उसमेंसे वह आवश्यक सार ले लेता है। उसे यह मालूम है कि हमारे विकासका कुछ आवश्यक भाग मनोमयकोष, एस्ट्रल और स्थूल श्रीरों और देहाभिमानी जीवके द्वारा ही सध सकता है; इसलिये इसपर कभी न कभी ध्यान देकर उसे अपने वशमें लाना चाहिये यह भी उसे मालूम है। पर इम यह समक सकते हैं कि संभव है, कभी-कभी उस जीवात्माको यह कार्य विलकुल त्राकर्पण न करे, उसका मन उसमें जरा भी न छगे। बहुत जनोंके स्थूछ शरीर इतने पापमय—विषमय—हो जाते हैं कि उनकी श्रोरसे कारणशरीरस्थ जीवात्माको पूर्ण निराशासी हो जाती है। कभी जीवात्मा ऊँचा हो, पर उसे नोचे कोष प्रारव्धवश बुरे मिलें। साधारणतः सात वर्षकी वय तक वालकका जीवात्मा (ईगो) अपने शरीर पर विलक्षल ध्यान नहीं देता। पर फिर भी बच्चोंमें इतना भेद रहता है कि उनके देहाभिमानी जीवोंमें भी वड़ा अन्तर हो जाता है। कोई तेज और उपदेशप्रहण्शील, कोई मुस्त और मन्द, कोई यथेच्छाचारी रहते हैं। बहुत इच्छाचारी

बालकका जीवात्मा निचले शरीरों पर ध्यान देना छोड़ देता है, यह सोचकर कि शरीरके बड़े होने पर बालक अच्छा हो जायगा। जब जीवात्मा निचले शरीरों पर अपना ध्यान श्रौर अपनी शक्ति वर्षाता है तब निचले शरीरोंमें आश्चर्यजनक उन्नति अति शीघ्र होने लगती है; पर यह शर्त है कि अन्तरात्मा वलवान हो और देहाभिमानी जीव अत्यंत बुरा न हो। जब देहाभिमानी जीव इसमें सहकारिता करता है तव यह फल और अच्छा होता है। इम छोगोंको यह भावना वनानेका प्रयत्न करना चाहिये कि हम देह नहीं हैं, कारणशरीरस्थ जीवात्मा हैं। शरीरकी चेतना जब रहे तब भी इस अन्तरात्मा या जीवात्मासे एक बननेका प्रयत्न जारी रहे। स्वार्थपरायण्वासे देहाभिमानी भाव बढ़ता है, इसिलये उसे तुरन्त त्याग देना चाहिये। हमारे मनमें ऊँचे विचार मरे रहें। यदि नीच विचार भरे रहेंगे तो कारणशरीरस्थ जीवात्मा उसका उपयोग न कर सकेगा। जब वह अन्तरात्मा अपनी डँगली टटोळनेको नीचे डाले तो हमें उत्साह सहित ध्यान देना चाहिये और उसकी श्राज्ञाका पालन करना चाहिये; ताकि वह हमारे मन पर बढ़ता हुआ अधिकार जमावे। निचले कोषोंमें क्रोध, द्रेष, उदासीके भाव भरे रहे हों पर उन्हें त्यागकर अब जीव अन्तरात्माकी ओर मुड़ता है और उसके अनुकूल बन जाता है। तब वह अन्तरात्मा बुद्धि-लोकको, एकत्वके लोकको, प्राप्त होनेका प्रयत्न करता है। इसी प्रकार मनुष्य 'श्रहं' की मायाको त्याग सकता है।

एकत्व प्राप्ति: जो द्वेतसंघमें प्रवेश करते हैं उन्हें इसका अनुभव होना चाहिये। ऐसी कल्पना करो कि हम लोग प्रत्येक एक एक कुएँमें रहते हैं और सूर्यका प्रकाश प्रत्येक कुएँमें आकर चमकता है पर वास्तवमें एक ही प्रकाश है; वैसे ही एक ईश्वरका

प्रकाश हमलोगों के हृद्यों के श्रांधकारको नष्ट करता है। ऊँचे मनोलोकमें जीवात्मा दूसरे व्यक्तिको देखकर उसमें भी ईश्वरीय चेतना देखता था, अब बुद्धिलोकमें बाहरसे देखना नहीं होता, वह चेतना उसके हृद्यमें स्थित है। वहाँ "हम" श्रीर "तुम" मिट जाते हैं, क्योंकि दोनों एक ही हैं, एक ही वस्तुके दो पहलू हैं।

इस आश्चर्यमय उन्नितमें शुद्ध आहंता, ऊँची आहंता (व्यक्तित्व) का लोप नहीं होता हालाँकि पूर्ण एकता हो जाती है। मनुष्यको अपना सब पिछली याद है, मनुष्य तो वही है, पर पूर्वकी अपेक्षा बहुत बड़ा है। उसे भान होता है कि मुक्तमें और भी बहुतसे व्यक्ति समा गये हैं। प्रत्येकको यह भान होता है कि सबको मैंने अपनेमें समा लिया है। थोड़ा और आगे बढ़नेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि हम सब उसी एक चेतनाके मुख मात्र हैं और जिनको हम अभी तक अपने गुण, अपनी बुद्धि, अपनी शक्तियाँ सममते थे वे वास्तवमें सब कालमें उस ईश्वरके गुण, उसकी बुद्धि, उसकी शक्ति रही हैं। "तत्त्वमिस," तुम बह ईश्वर हो, इसका इस समय अनुभव होने लगता है।

4.

जब बुद्धिलोककी चेतनाका पूरा प्रभाव स्थूल मस्तिष्क पर
पड़ता है तब जीवनके सब कार्यों श्रीर संबंधोंका एक नया
माहात्म्य हो जाता है। अब किसी दूसरे पर दृष्टिपात नहीं
होता; अब हम वह व्यक्ति या पदार्थ खुद हैं। उसे हम उसी
प्रकार जानते हैं जैसे हम श्रपनेको जानते हैं। उसकी
मंशाको ठीक वैसे ही सममते हैं जैसे अपनी मंशाको।
यह फल बुद्धिलोककी नीची श्रम्तर-भूमिकामें प्रथम बार प्रवेश
करनेसे प्राप्त नहीं होता। वहाँके जीवनकी पूर्ण चेतना बहुत
श्रभ्यास पर श्राती है। प्रथम दीचा पाकर श्रीर बुद्धि लोकमें

चेतनासहित प्रवेश करके उसे अव अन्तर भूमिकाओं में चढ़ना है ताकि वह अब तीन बेढ़ियोंको काट सके । अब उसने धारामें प्रवेश किया है। बौद्ध साहित्यमें इसे 'सोतापत्ति' या सोहन (स्रोतापत्ति) कहते हैं। हिन्दूशास्त्रमें इसे 'परिव्राजक' कहते हैं।

—:o:—

#### अध्याय ९

### द्वितीय श्रीर तृतोय दोचाएँ

प्रथम तीन वेडियाँ : इस पवित्रताके मार्गका प्रथम मुकाम द्वितीय दीक्षा है जिसे प्राप्त करनेके लिये तीन संयोजन या वेडियाँ त्यागना चाहिये। वे ये हैं:—

- १ सकायदित्ती—अहंका भ्रम,
- २ विचिकिच्छा संदेह या त्र्यनिश्चितता,
- ३ शीलव्बट परमाशा—मिध्याविश्वास ।

स्थूल-शरीरका श्रहंभाव तो अम है ही। इसको पूर्णतया त्यागनेमें यह भी भान हो जाता है कि कारणशरीरस्थ जीवातमका शुद्ध श्रहंभाव भी ईश्वरसे एकत्व प्राप्ति ही है। इसिछिये दूसरोंके विरोधमें इसकी कोई इच्छा नहीं हो सकती श्रीर जब यह दूसरोंकी श्रत्यिक सहायता करता है तब उसीसे उसकी अत्यिषक उन्नति भी होती है।

किसी-किसी बातमें शंका रहनेसे उन्नतिमें बाधा आती है। वह शंका अन्ध-विश्वाससे नहीं जाती पर ज्ञानसे जाती है। कर्म और पुनर्जन्मके नियमोंमें तथा पवित्रताके मार्गसे उच्चतम स्थितिकी प्राप्तिमें संदेहको विचिकिच्छा कहते हैं। इनकी सत्यताका ज्ञान होजानेसे दूसरी वेड़ीका त्याग होता है।

अन्धिविश्वासोंको और हृद्यको शुद्ध करनेके लिये किया-कांडकी आवश्यकताके विश्वासको तृतीय वेड़ी कहा है। शिष्यको माल्म हो जाता हैं कि क्रियाकांड केवल सहायक वस्तु है, पर उसके विना भी चल सकता है। कोई भी धर्म ऐसा नहीं है जिसके विना न चल सके। इस निश्चयको प्राप्त होनेसे तृतीय वेड़ी भी कट जाती है।

सीहियों के विभाग : मार्गके हर दर्जिमें ४ विभाग हैं;
(१) मार्ग जिसमें वेड़ियाँ त्यागी जारही हैं। (२) फलमें उसके
प्रयत्नोंका फल उसको विशेष और विशेष मिलता जाता है।
(३) भवग्ग, पूर्णता, जिस पदमें हम अभी हैं वहाँका कार्य
साध सकनेकी योग्यता। (४) गोत्रभू, जब अपनी दीचाकी
सब वेड़ियाँ काट कर शिष्य आगे बढ़नेको तैयार हो चुकता है।
दीचा मिलनेके पश्चात् स्थिति ऐसी है जैसे अङ्कुर फूटा हो;
भवग्ग स्थिति पहुँचने पर वृच्च बलवान हो जाता है।

दूसरी दीक्षाके प्राप्त होनेके पूर्व दीिचत शिष्यसे पूछते हैं, कि प्रथम दीचामें प्राप्त शिक्तयोंका उसने क्या उपयोग किया। यह भी इसके लिये आवश्यक है कि शिष्य अपने मनोमयकोषमें कार्य कर सके। मूलोकके पदार्थोंकी ठीक नकलें भुवलोंक और स्वर्ग-लोकमें रहती हैं; इसलिये मनोलोकका वर्णन मूलोकके शब्दोंमें किया जाता है। दूसरी दीचाकी कियाविधि बहुत कुछ प्रथम दीचा के समान होती है; इसलिये उसका वर्णन यहाँ नहीं किया जाता। लोग यहाँ अपने मनोमयकोषोंमें जाते हैं। यदि भगवान मैत्रेय दी चक होते हैं तो वे और भगवान वैवस्वत मनु भी कभी-कभी अपने स्थूछ शरीरमें उपस्थित रहते हैं।

मानिसक विकास : द्वितीय दीक्षाके बाद भी मनोमय कोषकी उन्नति होती रहती है।

इसी समयके लगभग शिष्यको मायानी रूप बनाना सिखाया जाता है। अभी जब हम अनलोंकमें निचरते हैं तब अपने एस्ट्रल शरीरमें निचरते हैं। अभी यदि अनलोंकसे भूलोकमें सहायता करनी पड़े तो उस एस्ट्रलके आसपास स्थूल प्रकृति जमा करके स्थूल शरीर बना लेते हैं। इसी प्रकार मनोमयकोपमें काम करनेवाला, आवश्यकता पड़ने पर, अनलोंकमें वहाँकी प्रकृतिका मायानी रूप बना सकता है। प्रथम दीक्षा तक मनुष्य रात्रिको एस्ट्रल शरीरमें काम करता है। उसको पूर्णतया अपने वशमें करलोनेसे मनोमयकोषमें किया आरंभ होती है। कार्ययोग्य बनजाने पर यह एस्ट्रल शरीरकी अपेक्षा निशेष उपयुक्त रहता है। मायानी रूप बनानेकी योग्यतासे ज्यक्ति मनोलोकको सुनर्लोकमें तुरन्त पहुँच सकता है, और काम करके नापस भी हो सकता है। आरम्भमें तो गुरुदेव मायानी रूप बनाना सिखाते हैं; फिर अभ्याससे शिष्य स्वयं बना लेता है। इस द्वितीय दीक्षाके संबंधमें मनोमयकोषकी बहुत उम्नति होती है।

-

जोखिम दूसरी दीचाक पश्चात्का काल बहुत जोखिम भरा है, हालाँकि पाँचवीं दीचातक जीव गिर पड़ सकता है अथवा भटकनेमें बहुतसे जन्म वृथा खो सकता है। यदि शिष्यके स्वभावमें कोई भी दुबंबता है तो वह इस समय जपर आ जायेगी। मनुष्यमें थोड़ा भी अभिमान या श्रहंकार हो दो उसे गिर पड़नेकी बड़ी जोखिम है। इस दीचाको प्राप्त शिष्यको सकदागामिन (सक्टदागामिन्) कहते हैं। उसे एक और स्थूछ जन्म लेना बाकी है। हिन्दू शास्त्रोंमें उसे कुटीचक कहते हैं। यदि नीचे तीनों लोकोंकी सिद्धियाँ उसे अभीतक प्राप्त नहीं हुई हैं तो प्रथाके अनुसार अब उन्हें प्राप्त करना चाहिये; क्योंकि उनके बिना इस समय प्राप्य ज्ञान समम्ममें न आवेगा और न मनुष्य सेवाका ऊँचा काम भी शिष्यसे वन सकेगा जिसमें सहायता देनेका अब उसका अधिकार है। जामत कालमें एस्ट्रल चेतना और निद्राकालमें स्वर्गलोककी चेतना उसे प्राप्य रहनी चाहिये।

तीसरी दीक्षा: जब शिष्य द्वितीय दीन्नाके चार शिकमी दर्जों में से सिद्ध होकर गोत्रभू हो जाता है तब वह तीसरी दीक्षा अनागामिन्के लिये तैयार हो जाता है। अनागामिन्का अर्थ है जिसे जन्म न लेना पड़े। हिन्दू शाक्षमें इस पदको हंस कहते हैं। दूसरी दीक्षामें मनोमयकोषकी उन्नति विशेष होती है, तीसरीमें कारण शरीरकी। अब जीवात्माका आत्मासे विशेष घनिष्ट संबंध बन जाता है।

यह दीचा स्वयं सनत्कुमार देते हैं या अपने तीन शिष्योंमेंसे किसीके हाथ दिलवाते हैं। दूसरीके दीचितको दीचाके बाद इनके समच पेश किया जाता है। अनागामिन्को दिनके कार्योमें मनके अरूप खंडकी चेतना बनी रहती है। रात्रिको निद्राकालमें वह बुद्धिछोकमें प्रवेश करती है। इस दीक्षाके बाद चौथी और पाँचवी बेड़ियोंका अंश जो कुछ बचा हो वह त्यागना पड़ता है। चौथी बेड़ी कामराग, संस्पर्श भोग, इन्द्रिय भोग या काम भोगकी इच्छा है और पाँचवीं पतिघ अर्थात् कोघ या घुणाकी संभावना। अब उसे बाह्य वस्तुओंका दास बननेकी

संभावनाको पूर्णतया जीत चुकना चाहिये। चौथेमें धरतीका नीचा प्रेम भी त्या जाता है। मनुष्यका शुद्ध और उत्तम प्रेम तो किसी दीचा द्वारा कभी घटता नहीं है वरन बढ़ता है।

—:o:—

#### अध्याय १०

### ऊँचो दीचाएँ

पहली, दूसरी तथा तीसरी दी हाओं में दी हित धीरे-धीरे बुद्धि लोककी चेतनाको वढ़ाता जाता है। चौथी दी हामें वह निर्वाण्न लोकमें प्रवेश करता है। तबसे आगे वह इस लोककी नीची पाँच अन्तर्भूमिकाओं को जीतनेमें निरन्तर लगा रहता है। मनुष्यका जीवात्मा इन्हीं भूमिकाओं में रहता है। ऐसा कहा जाता है कि साधारण कालमें पहली और चौथी दी हा के बीच में सात जन्म लग जाते हैं और चौथीसे पाँचवीं दी हा के बहुत घट वढ़ सकता है। पर इन जन्मों में समय कम लगता है क्यों कि जन्म स्वर्गमें गये बिना एकके पश्चात् दूसरा ऐसे लगातार होते हैं। चौथी दी हा वाले को श्वार होते हैं। चौथी दी हा वाले को श्वर्धत, हिन्दुओं में परमहंस कहते हैं।

निर्वाण लोक: अर्हतकी चेतना स्थूल शरीरमें बुद्धि-लोक की और निद्रा या समाधिकालमें निर्वाण लोककी रहती है दीचाकालमें अर्हतको निर्वाण लोककी चेतना थोड़े समयके लिये भी प्राप्त होनी चाहिये जैसे प्रथम दीचामें बुद्धिलोककी चेतना थोड़ी देरके लिये प्राप्त हुई थी। निर्वाण: अब उसे प्रति-दिनके अभ्याससे निर्वाणलोकमें अधिक और अधिक प्रवेश करते जाना चाहिये। यह बड़ा कष्ट साध्य है। एक लोकसे दूसरे ऊँचे लोककी चेतना प्राप्त करने पर बड़ा आश्चर्य होता है। ऐसा भान होता है कि यही सत्य है, ऐसा पूरा ज्ञान हमें पूर्वमें कभी नहीं हुआ था। पर इससे ऊपर चढ़ने पर यह ज्ञान भी बहुत अपूर्ण मालूम होता है।

निर्वाण छोकका वर्णन बड़ा कठिन है। मनुष्य अव मिट गया। मनुष्यमें अब ईश्वर है। अपनेमें ईश्वर, दूसरेमें ईश्वर, उसे सर्वत्र ईश्वर ही दिखता है। ऐसी कल्पना कीजिये कि सारा विश्व जीते प्रकाशकी श्रातिविशाल धारामय है श्रीर उसीसे भरा हुआ है। अनपेत्तभावसे वह आगे वढ़ रहा है। प्रकाश के महासमुद्रका श्रागे बढ़ता अबाध्य अटल प्रवाह, युक्तियुक्त, अतिघनीभूत, गाढ़ा, पर कर्षरिहत प्रकाश दिख पड़ता है। उसके वर्णनके लिये योग्य शब्दही नहीं मिलते । आरम्भमें तो आनन्दका भान होता है और अति तेज प्रकाशके सिवाय और कुछ नहीं दिखता। पर धीरे-धीरे हमें दिख पड़ता है कि इस अचएड प्रकाशमें भी श्रीर भी विशेष प्रदीप्त प्रकाश केन्द्र हैं जिनमेंसे निकलकर प्रकाश नया रंग धारण करता है। बीरे-धीरे समममें आने लगता है कि ये प्रदीप्त प्रकाश-केन्द्र महात्मागण, प्रहाधिपति बड़े देवता, कर्म देवता, ध्यान चौहान, बुद्ध, मसीह और, श्रौर पदाधिकारी हैं जिनका हमें नाम भी नहीं माल्म । इनके द्वारा प्रकाश और प्राय् निचले छोकों में उतरते हैं। मनुष्यको इस लोकमें ऐसा भान होता है कि इम हर स्थानमें हैं श्रौर कहीं भी ध्यान जमा सकते हैं।

डॉक्टर ऋरंडेलने निर्वाण लोकका सुन्दर वर्णन ऋपनी
4'निर्वाण' नामकी पुस्तकमें किया है:—

वाह्यजगत्में भारत्व, बुद्धिलोकमें एकत्व, निर्वाणमें भ्रवर्णनीय प्रकाश है। बुद्धिलोकमें एकत्वकी श्रपेत्ता यह श्रल्लोकिक ज्ञानातीत प्रकाश सत्यके विशेष निकट है हालाँकि बुद्धिलोकका एकत्व ही अभीतक जगत्की वड़ी श्राश्चर्यमय वस्तु जान पड़ती थी। यह अकाश रूपसे परे है।

निर्वाणमें ऐसा भान होता है कि मानो हम स्थिर बिजलीमें घिरे खड़े हैं। सब वस्तुओंमें एकत्रित प्रकाश दिख पड़ता है। मंद प्रकाश दिखता है तो यह जंगली मनुष्य है; यदि प्रदीप्त प्रकाश है तो यह विकसित मनुष्य है; यदि ऐश्वर्यमय प्रकाश है तो यह महात्माका प्रकाश है; प्रकाशका स्थमाव कहीं नहीं है; प्रकाश ईश्वररूपी सूर्यकी इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, प्रेमशक्ति है।

अहतको इसमेंसे बची श्रौर पाँच वेड़ियाँ त्याग देनी पड़ती हैं। वे ये हैं:—

- इ. रूपराग—रूपकी सुन्दरता या स्वर्ग तकमें रूप धारण करके रहनेकी इच्छा ।
- अरूपराग—रूपरिहत जीवनकी इच्छा ।
- ८. मानो-अभिमान, मान।
- होनेकी संभावना ।
- १०. अविद्या-अज्ञान। ६ या ७ में रागके साथ द्वेष भी शामिल है।

अब वह पूर्ण शांतिको प्राप्त होता है; सदैव प्रकाशमें स्थित है। हमारी प्रहमालाका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना उसके लिये संभव है।

पाँचवीं दीक्षा अशेख पदकी है। हिन्दू उसे जीवनमुक्त अवस्था कहते हैं। इसकी इच्छा ईश्वरइच्छासे एक है। जामक कालमें भी उसकी चेतना निर्वाण लोककी रहती है। ये छोग ब्रह्मासे एक हो जाते हैं, इसलिये शिष्य बना सकते हैं। अईत शिष्य नहीं बना सकता क्योंकि वह इस एकत्वको प्राप्त नहीं हुआ है।

अशेख पद प्राप्त होने पर आगे सात मार्ग हैं जिनमेंसे कोई एक जगत्की आवश्यकतानुसार या अपनी इच्छानुसार लिया जा सकता है। वे मार्ग ये हैं:—

१—वह निर्वाण पदको ग्रहण करे। वहाँ जो कार्य करेगा उसकी हम कल्पना नहीं कर सकते। कदाचित् वह किसी भविष्य जगत्में "श्रवतार" ले। यह 'धर्मकाय' लेना कहा जाता है। यह निर्वाण लोकके अगुको त्याग कर अपने निज (मोनड) रूपमें रहता है।

२ - वह 'संभोगकाय' प्रहण करे । यह नर्वाण श्रणुको रखे रहता है और त्रिमूर्ति रूप आत्माके रूपमें रहता है ।

३ — वह 'निर्माणकाय' धारण करे और आध्यात्मिक शक्तियों का जो मंडार है उसमें वृद्धि करे। ईश्वरके प्रतिनिधि इस मंडारमें से शक्ति लेकर जगत्के कल्याणके छिये खर्च करते हैं। इनका कारणशरीर रहता है और स्थायी परमाणु भी रहते हैं जिनके बबसे वह नीचे तीन लोकोंमें रूप धारण कर सकता है। ४—वह अपनी मनुष्य जातिके श्वेतसंघका सदस्य वना रहे। यह संघ जगत्का राज्य श्रीर रत्ना करता है, या

५—वह दूसरी महमालामें जाकर रूपोंके बनानेमें सहायता करे, या

६-देववर्गमें प्रवेश करे, या

७—ईश्वरकी सेवाका कार्य प्रहण करे और सूर्यमंडलमें ईश्वर जहाँ भेजे वहाँ जाकर उनका कार्य करे। यह कार्य कठिन सममा जाता है। यहाँ स्थूछ शरीर नहीं होता पर आवश्यकतानुसार क्रियाशक्तिसे जिस प्रह पर काम पड़े वहाँकी प्रकृतिका शरीर उसे वना लेना पड़ता है। इन सेवकोंमें भिन्न-भिन्न जीव भिन्न-भिन्न दर्जोंके होते हैं।

-:0:-

#### अध्याय ११

### महात्माओंका कार्य

महात्मा लोग जगतके विकासमें हजारों रीतियोंसे सहायता करते हैं। अति ऊँचे लोकसे जगत् पर प्रकाश और जीवनकी वर्षा करते हैं जिसमें सूर्य-प्रकाशके समान पूर्ण स्वतंत्रतासे जो उन्हें ले सकता हो ले।

जैसे सूर्य-प्रकाश स्थूल जीवनके लिये आवश्यक है और सूर्यसे मिलता है, वैसे ही आध्यात्मिक जगत् को वही जीवन श्वेतसंघ द्वारा मिलता है। धर्मोंसे संबंध रखनेवाले महात्मा उन धर्मोंमें अपनी आध्यात्मिक शक्तियाँ भर देते हैं जिनका उपयोग उस धर्मके अनुयायी उसमें वताई हुई क्रियाओं द्वारा

कर सकते हैं। ये बुद्धिसंबंधी ऊँचे विचाररूप जगत्में भेजते हैं कि उनका लाम जगत्के बुद्धिमान लोग लेकर जगत्का कल्याण कर सकें। ऊँचे मनोलोकमें वे अपने शिष्योंको अपनी इच्छाएँ प्रगट करते हैं और बताते हैं कि उन्हें क्या काम करना चाहिये। नीचे मनोलोकके विचाररूप भी वे कल्याणार्थ भेजते हैं। भुवलोंकमें मृतोंकी सहायता, छोटे शिष्योंकी शिचाकी निगरानी, और आवश्यक वातोंमें असंख्य सहायताओंका देना, इत्यादि कार्य किये जाते हैं। भूलोकमें संसारकी घटनाओं पर ध्यान देना, संसारकी बुरी वृत्तियोंको यथासाध्य सुधारनेका या मिटानेका प्रयत्न करना, विकासक्रमकी सहायक और विरोधकारी शक्तियोंकी, एकको बढ़ाकर दूसरीको घटाकर, समता करा देना, ये उनके कार्य हैं। देशके अधिष्ठातादेवोंके साथ मिलकर उन देशोंके आध्यात्मिक कल्याणके लिये वे प्रयत्न करते हैं।

उन्होंने ऐसी व्यवस्थाकी है कि पृथ्वीभरमें कोई भी प्राणी सहायता बिना न रहे। उन्होंने भू के विभाग करके हरएकने एक-एक भाग अपने संरक्षणमें लिया है जैसे एक योरपकी निगरानी करते हैं, दूसरे भारतकी। उनको सब वर्गों के विकास पर ध्यान रखना पड़ता, है। हर देशमें महात्माके सिवाय उस देशका एक संरक्षक देव भी रहता है। ये महात्मा लाखों करोड़ों मनुष्यों पर आध्यात्मिक आशीर्वाद वर्षाते रहते हैं। जगत्का कर्म अच्छा है कि उसे ऊपर उठानेवाली शक्तिकी सहायता मिले। एक ऐसा शक्ति-भंडार है जिसमेंसे उसे यह शक्ति मिछती है। जो मोक्ष पाकर निर्माणकाय मार्ग लेते हैं, उनके त्यागसे इस भंडारमें शक्ति भरती है। जो मनुष्य अपनी इच्छा मिटाकर ईश्वरइच्छानुकूल अपनी इच्छा बनाते हैं वे भी कुछ शक्ति इस भंडारमें भरते हैं। ईश्वरकी योजनाही ऐसी

है कि मनुष्य अमुक उन्नित कर उसकी योजनामें सहकारिता करने लगे। महात्मागण अरूपखंडमें सब जीवात्माओं पर यह शक्ति वर्षाते हैं जिससे जीवोंकी सोयी जीवन शक्ति जाग उठे। वह जीवन अमर बीज सरीखा है क्योंकि हरएकमें वह व्याप्त है। मनुष्यमें उस बीजका अंकुर धरतीसे ऊपर निकल चुका है। महात्माओंके द्वारा जो आध्यात्मिक शक्तिरूपी सूर्यका प्रकाश उसपर पड़ रहा है उसीके ऊपर उस अंकुरकी बढ़नेकी शीव्रता आश्रित है।

भक्तिका उपयोग : सब धर्मोंकी धार्मिक क्रियात्रोंका उपयोग करके महात्मा लोग उनके द्वारा श्रपना आशीर्वीद जगत कल्याणार्थं वितरणं करते हैं। इस क्रियाके लिये जो दूसरे प्रसंग मिलते हैं उनका उपयोग भी ये महात्मागण करते हैं। असल महत्व भक्तिका है। उस भक्तिका कारण या निमित्त इतिहासकी दृष्टिसे सत्य हो अथवा श्रसत्य हो, इसका माहात्म्य नहीं है। कभी-कभी गाढ़ी भक्तिके साथ कट्टर सांप्रदायिक भाव भी मिला रहता है। ऐसे प्रसंगपर महात्मा सारी भक्तिका उपयोग कर लेंगे और घृगाकी उपेक्षा करेंगे। वाराणसी सरीखी वस्ती सदैव महान शक्तिका केन्द्र बनी रहती है। जब कोई धार्मिक मेला लगता है तब यह शक्ति और भी बढ़ जाती है। यहाँ जो मन्दिर श्रौर स्मृतिचिन्ह हैं उन्हें महात्मागण अपने श्राशीर्वाद वितरणका जरिया बनाते हैं। जो कोई किसी मूर्ति सरीखे पदार्थके प्रति भक्ति दर्शावेगा उसको उस मूर्तिके द्वारा महात्माओंकी आशीर्वाद रूपी शक्ति मिलेगी। यदि किसी स्थान या पदार्थके प्रति लोगोंकी श्रद्धा वहुत कालसे बनी रही है तो इस कारणसे भी महात्मागण उसका उपयोग जगत्कल्याणार्थं करेंगे।

शिष्योंका कार्य : शिष्य भी निचले लोकोंमें महात्माओंकी शक्ति लिये निलका हैं। वे श्रीर कई प्रकारसे महात्माओंके कार्यमें सहायता करते हैं। प्रेतोंको सहायता देना, और देवी सहायकोंका काम करना, इन शिष्योंके ऊपर छोड़ दिया गया है। इसमें बहुतसे प्रेत भी योग देते हैं। जो सेवाका कार्य यहाँ भूलोकपर उत्साहसे करता है वह अपनी देहके निद्राक्शलमें भी भुवलोंक में ऐसाही कार्य कर सकेगा। इसका पूरा वर्णन "श्रदृश्य सहायक" नामकी पुस्तकमें देख लेना चाहिये।

इन महात्मात्रोंकी श्रोरसे यूरोपको ज्ञान देनेके लिये प्रत्येक शताव्दीके श्रान्तिम २५ वर्षमें एक प्रयत्न होता है। पिछली शताव्दीका प्रयत्न थिश्रोसॉफिकल समाज है जिसकी स्थापना सन् १८७५ ई० में हुई थी। मनुष्यकी चौथी या मंगोल जातिसे पाँचवीं आर्य जातिकी स्थापना खेत संघके प्रयत्नसे हुई। आर्य जातिकी छठवीं उपजातिकी तथा छठवीं मूल जातिकी स्थापना इस संघके द्वारा ही होगी। यह भगवान् मनुका खास काम है। वे श्रपने प्रयत्न से एक नमूनेसे मनुष्यका दूसरा नमूना ईश्वरके संकल्पानुसार रचते हैं।

—:o:—

#### अध्याय १२

# किरगों, ऊँचे पद और उत्सव

अशेख पदकी दीक्षाके बाद चौहान पदकी छठवीं दीचा लेनी पड़ती है। उसके आगे महाचौहान पदकी दीचा है। सूर्य-प्रकाशमें सात रङ्ग होते हैं वैसे ही पृथ्वीपर सव मनुष्य और सब वस्तुएँ सात भागों में या सात किरणों में अपने स्वभावानुकूल विभक्त होती हैं। प्रथम किरण राज्य करनेकी किरण है, उसके अधिष्ठाता भगवान सनत्कुमार हैं। दूसरी किरण ज्ञानकी, धर्मकी है, इसके स्वामी भगवान बुद्ध हैं। उनके नीचे उनसे दूसरी सीढ़ी पर भगवान मैत्रेय वोधिसत्व हैं।

शेष पाँच किरणोंकेकार्य:--

(३) योग्य समय पर योग्य रीतिसे काम्न करना, (४) सुन्दरता और शांति, (४) विज्ञान, (६) भक्ति. (७) क्रियाकांड,

भगवान सनत्कुमारके नीचे उनके सहायक भगवान मनु वैवस्त्रत हैं। मनु श्रीर बोधिसत्वकी बराबरीमें दूसरी पाँच किरणोंके स्वामी महाचौहान हैं। इन पाँचमें से प्रत्येक किरणके अलग-श्रालग श्राधिपति हैं। सातवीं दीक्षावाले भगवान मनु, बोधिसत्व और महाचौहानसे ऊपर भगवान बुद्धका दर्जा आठवीं दीचाका है; उनसे परे भगवान सनत्कुमारका पद है। मनुष्यकी प्रत्येक मुख्य जातिमें एक बुद्ध अवतार लेते हैं और दूसरी किरणके कार्यको करते हैं। गौतमबुद्धके पूर्व काश्यपबुद्ध थे। बुद्धका कार्य ऊँचे छोकोंमें रहता है। निचले लोकोंका कार्य वे अपने नायव और प्रतिनिधि वोधिसत्वको सौंप देते हैं। भगवान सिद्धार्थ गौतमबुद्ध हमारी मनुष्यजातिसे विकसे हुए प्रथम फूल या प्रथम बुद्ध हैं। उनके पूर्वके बुद्ध दूसरे विकासके थे, इमारी मनुष्यजातिसे नहीं विकसे थे। कई हजार वर्ष बीते जब यह आवश्यकता हुई कि भूलोकके महात्माओं में से कोई विशेष प्रयत्न करके जगद्गुरुके पदको प्राप्त हो; उस समय हमारी प्रहमालाके चतुर्थ जन्मके चौथे चहरके मध्यकाल तक बड़े-बड़े अधिकारी वर्ग (जैसे मनु और जगद्गुरु) दूसरी प्रहमालात्रोंकी मनुष्य जातियोंसे आये थे। उस समय इस कार्यके लायक किसीकी उन्नति नहीं हुई थी। उस समय दो

माई थे, मगवान बुद्ध और भगवान मैत्रेय जिनकी समान और श्रीरोंसे बहुत अधिक उन्नति हुई थी। भगवान बुद्धने उस समय यह निश्चय किया कि जो कुछ असाध्य साधना पड़े वे प्रत्येक जीवनमें प्रयत्न करके उसे साधकर आवश्यक पदको प्राप्त कर लेंगे। भगवान मैत्रेयने उन्हें उनके कार्यमें सहायता करनेकी प्रतिज्ञा की। भगवान बुद्धने बुद्धकी दीचा पाकर और उस पदको प्राप्त होकर अपने उपदेशसे संसारका कल्याण किया। पर किसी प्रकार उनके कार्यमें कुछ त्रुटि रह गई जिसे भगवान सनत्कुमारके शिष्यने आदि शङ्कराचार्य ( भाष्यकार नहीं ) का जन्म लेकर पूरी की। ये भगवान सनत्कुमारके तीन कुमार शिष्योंमें से एक शिष्य थे। उसी संबंधमें भगवान बुद्ध हर वैशाख पूर्णिमाको प्रकट हो दर्शन देते और संसारको आशीर्वाद देते हैं। उन्होंने इस पृथ्वीसे इतना संबंध रखा है कि जब उनके उत्तराधिकारी जगद्गुरु भगवान मैत्रेय किसी आवश्यकताके प्रसंग पर उनका आवाहन करें तो वे प्रकट होकर अपनी सळाह और सहायता दे सकें। भगवान बुद्धकी विशिष्टशक्ति है जिसे वे आशीर्वाद देते समय पृथ्वीके कल्याणार्थ बरसाते हैं।

भगवान मनु और वोधिसत्वके समान मातृविभागकी व्यवस्था एक देवीके हाथमें है। इन्हें जगदम्बा (वर्ल्ड मदर) कहते हैं। ये देवी जीससकी माता थीं। पीछेसे देववर्गमें प्रवेश करके अब इस पद पर हैं। माता बनना स्त्रीका परम सीभाग्य है। इस देवीके देवदूत प्रत्येक स्त्रीको प्रसवकालमें इनकी सहायता पहुँचाते हैं। गर्भधारण कालमें भी इन्हींका देवदूत कमदेवताओंकी इच्छानुसार और माताके कोषोंकी सामग्रीके आधार पर गर्भस्थ बालकका शरीर बनाता है। इस कालमें माताको प्रसन्न, शांत और एक भावनायुक्त रहना चाहिये।

ईश्वर त्रिमूर्ति रूप हैं; भगवान सनत्कुमार, बुद्ध और महाचौहान एक प्रकारसे उन तीन मूर्तियोंके अवताररूपमें इस भू पर हैं। भगवान सनत्कुमार त्रादि तत्त्व या सातवें छोककी जामत चेतनावाले, बुद्ध अनुपाद्कछोककी जामत चेतनावाले, श्रीर महाचौहान निर्वाणलोककी जामत चेतनावाले हैं। भगवान ब्रद्धका कार्य बुद्धिलोकसे नीचे नहीं उतरता श्रीर अगवान सनत्कुमारका निर्वाण लोकके नीचे नहीं त्र्याता। पर अगवान बोधिसत्व और मनुके द्वारा उनकी शक्तियाँ सबसे नीचे छोकोंमें **खतर सकती हैं** ; मनु, वोधिसत्त्व श्रीर महाचौहान सातवीं दीचा प्राप्त हैं ; तीन कुमार और बुद्ध आठवीं दीक्षाको प्राप्त हैं । भगवान सनत्कुमार नवमीं दीचा प्राप्त हैं। यह नवमीं दीक्षा कोई दूसरा नहीं देता, स्वयं ले लेनी पड़ती है। इनका कार्य एक गोलेके विकासकालमें चलता रहता है। तत्पश्चात् उनकी दसवीं दीक्षा इस भूलोकसे वाहर होती है और वे मीन रक्षक (साइलेंट वाचर) के पदको ग्रहण करते हैं। इस पदको वे एक परिक्रमा काछ तक धारण करके पीछे उसे दूसरे किसीको सौंप कर उससे मुक्त होते हैं। सनत् शब्दका अर्थ सदैव है। ये सदैव कुमार अवस्थामें रहते हैं। इन कुमारोंके देह सोलह वर्षके दिखते हैं श्रीर योगमायासे बने हैं। इन्हें खाना, पीना, सोना, नहीं पड़ता। ये लोग शुक्र लोकसे कोई ६५ लाख वर्ष पूर्व यहाँ उतरे थे। महाभारत, शांतिपर्वमें इन्हें श्वेतद्वीपवासी, वज्रास्थिकाय, शुद्धसत्त्वप्रधान कहा है। जहाँ वे उतरे थे उस स्थानको शंबल या श्वेतद्वीप कहते हैं। वह गोबी मरूस्थलमें है। पूर्व कालमें वहाँ समुद्र था। इस पृथ्वीके लिये भगवान सनत्कुमार ईश्वरके प्रतिनिधि हैं। सारी पृथ्वी उनके श्रोजस्में और चेतनमें समाई हुई है और उनके हाथमें हैं। उसका सारा विकास, मनुष्य,

देव, देवगण, पशु, वनस्पति, आदि सारे प्राणियोंका उनके हाथमें है। पृथ्वीके शरीरधारी महान व्यक्ति इनसे भिन्न हैं। तीसरी दीन्नाके लिये शिष्य इनके सामने उपस्थित किया जाता है, पर किसी-किसी प्रथम दीक्षावाले बड़े होनहार व्यक्तिको भी इनके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होता है। तब गुरुदेव महाप्रभुकी आज्ञानुसार उसे ऊँचे कोषमें उसके सम्मुख उपस्थित करते हैं। हर सात वर्षमें सब अशेखपदप्राप्त महात्माओंकी सभा इन महाप्रभुके यहाँ शंबालामें होती है जिसमें अशेख पदसे नीचेवाले कुछ दीक्षित भी बुलाये जाते हैं। यहाँ जगत्की व्यवस्थाका निर्णय होता है। ऐसा कहा जाता है कि हमारी प्रहमालाके सातवें परिक्रमाक्षालका पूर्ण विकसित मनुष्य भी इन महाप्रभुसे एक पद नीचा रहेगा। हर जगत् कालमें तीन जगत्पति होते हैं जिनमें ये प्रभु तीसरे हैं। इनके तीन शिष्य आगेके गोले पर इनका पद प्रहण करेंगे।

### वैशाख-पूर्णिमा

इस तिथिको भगवान् बुद्धका जन्म, बुद्ध पद्की प्राप्ति,
मरण आदि प्रधान घटनात्रोंका उत्सव मनाया जाता है। उनके
इस आगमनके संबन्धमें त्रीर उसके त्रात महत्वके रहस्य प्रभावसे
संबंध न रखनेवाळी भूलोकमें एक प्रगट बाह्य क्रिया होती है
जिसमें साधारण यात्रियोंके समृहके सामने भगवान प्रगट होते
हैं। यात्रीगण उन्हें देख पाते हैं कि नहीं इसका निश्चय नहीं है।
यह उत्सव एशियाके बौद्धोंको ज्ञात है और बुद्धछायाद्र्शनके
नामसे प्रसिद्ध है। चार कुमारोंको छोड़कर श्वेतसंघके बाकीके
सब सदस्य इसमें सम्मिळित होते हैं। कोई ऐसी बाधा नहीं
दिखती जिसके कारण उत्साही थित्राँसोफिस्ट अपने एस्ट्रळ या
वासनादेहमें वहाँ उपस्थित न हो सकें। जो जानते हैं वे ठीक

पूर्णिमान्तके प्रायः एक घण्टा पूर्व सो जाते हैं और एक घंटा तक कोई उन्हें जगावे नहीं ऐसी व्यवस्था कर लेते हैं।

ल्हासासे कोई चार सौ मील पश्चिमको नेपाल सरहदके पास हिमालयके उत्तरमें एक मैदान है जिसके चारों घोर नीचे पहाड़ हैं। इसकी लम्बाई डेढ़ मील और चौड़ाई कुछ कम है। जमीन पथरीली, कड़ी घासवाली, उत्तरको ढुलती हुई है। पश्चिमकी घोर एक छोटासा नाला बहता है। पासमें कोई गाँव नहीं है। केवल पूर्वमें एक पहाड़पर एक दूटा मन्दिर और दो तीन ओपड़ियाँ हैं। दक्षिणमें बीचमें वेदीके समान एक शिला, बारह फुट लम्बी और छः फुट चौड़ी और धरतीसे तीन फुट ऊँची है। यात्री लोग यहाँ कुछ दिन पूर्वसे आकर अपने तम्बू नदी किनारे गाड़ कर रहने लगते हैं; पूर्णिमाके पूर्व दिन सबलोग स्नानकर और कपड़े घोकर पित्र हो जाते हैं।

पूर्णमान्तके कुछ घंटों पूर्व ये लोग उत्तरकी श्रोर शिलासे कुछ दूरी पर शांतिसे बैठ जाते हैं। लामा लोग जो वहाँ उपस्थित हों, उन्हें धर्मोपदेश देते हैं। पूर्णिमान्तके एक घंटा पूर्व एस्ट्र या वासनादेहवाले यात्री श्राने छगते हैं। इनमें खेतसंघके सदस्य भी रहते हैं। इनमेंसे कुछ स्थूल रूप धारण कर लेते हैं श्रीर यात्री छोग उन्हें साष्टांग प्रणाम करते हैं। इस प्रसंग पर हमारे गुरुदेवगण तथा उनसे बड़े महात्मा अपने शिष्योंसे तथा दूसरोंसे मित्रभावसे वार्तालाप करते हैं। इसी कालमें नियत व्यक्ति उस शिलाको उत्तम पुष्पोंसे सजाकर उसके चार कोनों पर कमलकी माछाएँ रखते हैं। शिलाके बीचमें एक सुन्दर नकाशीके कामवाछा सुवर्ण पात्र पानीसे भरा रख दिया जाता है। उसके सामने थोड़ी जगह खुली छोड़ दी जाती है।

पूर्णिमाके आध घंटा पूर्व महाचौहानके संकेत पर श्वेतसंघके सदस्य वेदीशिलाके उत्तरमें खुली जगहमें भीतरकी ओर मुख करके तीन वर्तुलाकार श्रेणियोंमें खड़े होते हैं। संघके नये सदस्य बाहरके वर्तुलमें रहते हैं और बड़े बड़े अधिकारी भीतरी तीसरे वर्तुलमें नियत स्थानोंमें रहते हैं।

श्रव पाळी भाषाके कुछ श्लोक पढ़े जाते हैं। उनके अन्तमें भगवान मैत्रेय अपने हाथमें शिक्तंड धारण िकये भीतरी वर्जु के केन्द्रमें स्थूल देहमें प्रगट होते हैं। यह दंड महाप्रभु (किंग) के पास शंवालामें रहता है श्रीर हमारी प्रहमालाके श्रधीश्वरकी सव शक्तियों के वितरणके छिये स्थूल केन्द्र है। छाखों वर्ष पूर्व जब मनुष्यवर्गका विकास हमारी प्रहमाछामें आरंभ हुआ तब इन श्रधीश्वरने इस दंडमें ओजस् शिक्त भरी थी। जहाँ वह रहता है वहीं उन श्रधीश्वरका ध्यान श्राक्ति होता है, और वहीं विकासकी क्रिया का केन्द्र रहता है। जब दंड पृथ्वीसे दूसरे गोलेको जायेगा तब यहाँकी विकास किया कक जायेगी। सूक्त गोलोंको वह जाता है कि नहीं यह मालूम नहीं है। यह दंड दो फुट लंबा एक श्रलभ्य धातु का बना है। इसका व्यास दो इक्ष के लगभग है। दोनों छोरोंपर एक एक बड़ा गोल श्राक्तिका नोकदार हीरा उसमें छगा है। वह सदैव अग्निसे विरा हुशा दिखता है। भगवान मैत्रेयके सिवाय और कोई उसे इस क्रियामें नहीं छूता।

भगवानके प्रगट होनेपर सब महात्मागण और दीक्षित गंभीरतासे उन्हें मुक्कर प्रणाम करते हैं और एक इलोक गाया जाता है। इसके पश्चात् भीतरी दो बर्तुलोंके लोग आठ भागोंमें विभक्त होकर बाह्य वर्तुलके भीतर क्रॉस या स्वस्तिकके रूपमें खड़े होते हैं, फिर स्वस्तिक से त्रिकोण बनता है, और भगवान स्वस्तिकके केन्द्रसे त्रिकोणके सिरपर खड़े हो जाते हैं। फिर उस शिलापर भगवान सम्मानपूर्वक इस दंडको रखते हैं। महात्मागण वर्जुळाकारसे दूसरी-दूसरी आकृतियोंमें खड़े होते हैं और गाते रहते हैं। सातवीं और अन्तिम आकृति पंचकोण तारेकी है। अब गाना रुकता है। कुछ चणके गंभीर मौनके वाद भगवान दंडको फिर अपने सिरके ऊपर उठाकर मधुर पालोमें कहते हैं:— सब तैयार है, गुरुदेव! पधारिये। ठीक पूर्णिमान्त समयपर यह दंड फिर रख दिया जाता है और आकाशमें भगवान बुद्धकी अधर विशाल मूर्ति दिच्च पहांपर दिख पड़ती है। खेत-संघके सदस्य हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं। उनके पीछेके यात्रीगण साष्टांग प्रणाम करते लेट जाते हैं। अब छात्र छत्तके लिये भगवान बुद्धके बनाये तीन पाली खोक गाये जाते हैं जिनका अर्थ यह है कि भगवान शाक्यमुनि, मनुष्योंमें श्रेष्ठ, शिक्षक, पारंगत, कृतकृत्य, बळवीर्यसमांगी हैं, उन सुगत बुद्धकी मैं शरण जाता हूँ। उसी प्रकार मैं सत्यधर्मकी शरण प्रहण करता हूँ और संघकी शरण प्रहण करता हूँ।

अब साष्टांग पड़े हुए यात्री लोग उठते हैं और भगवानकी मूर्त्तिको देखते खड़े रहते हैं। श्वेतसंघ उनके उपकारार्थ महा-मंगल सूत्र गाता है। इसमें भगवान बुद्ध प्रश्नके उत्तरमें बताते हैं कि महामङ्गल क्या है। मूर्खोंकी सेवा न करना, पंडितोंकी सेवा करना, मानयोग्योंका मान करना, यह उत्तम मंगल है। श्रच्छे देशमें वास करना, पूर्व जन्ममें अच्छे कमें किये रहना, अच्छी वासनाओंवाली आत्मा पाना यह उत्तम मंगल है। ऐसे ११ उत्तम मंगल बताये जाते हैं। जो मूर्ति वायुमें पहाइपर दिखती है वह बहुत बड़ी रहती है, पर उसमें भगवानके पृथ्वीपरके शरीरकी ठीक आकृति रहती है। उसके आसपास तेजपुंज (ऑरा) और बहुत उप्र प्रकाश रहता है। तेजपुंजमें नाना प्रकारके ऊँचे रंग रहते हैं।

भविष्यमें भगवान मैत्रेय भगवान युद्धके पदको प्राप्त होंगे और महात्मा कुशुमि उनके स्थानको प्रहण करेंगे। महामंगल भूत्रके अन्त में भगवान उस खणें पात्रको उठाकर अपने सिरकें ऊपर थोड़े काल पकड़े रहते हैं और यात्री लोग भी उनका अनुकरण कर अपने पात्रोंको उसी प्रकार उठाते हैं। उस पात्रको शिलापर रखते समय एक और श्लोक भगवान बुद्धके विषयमें गाया जाता है। इसकी समाप्ति पर भगवान बुद्ध अपना दाहिना हाथ आशीं-वाद देनेकी मुद्रामें उठाते हैं और उनके मुखपर अवर्णनीय प्रेमकी मुस्क्यान प्रगट होती है। छोगोंमें फूछोंकी अच्छी वर्षा होती है। श्वेतसंघके सदस्य फिर प्रणाम करते हैं, यात्री लोग भी साष्टांग प्रणाम करते हैं और वह मूर्ति धीरे-धीरे मंद पड़ कर छोप हो जाती है। इवेतसंघके सदस्य अपने-अपने दीचाकालके क्रमानुसार भगवान मैत्रेय के पास त्राकर उस सुवर्ण पात्रके जलका घूंट पीते हैं। यात्री लोग अपने पासका पानी पीकर वाकीको चमड़ेकी वोतलोंमें भर अपने-अपने घर ले जाते हैं। उसे भूत भगानेमें और बीमारोंको अच्छा करनेके काम में लाते हैं। फिर यह वड़ा जमाव विखर जाता है।

## आषाढ़ या गुरुपूर्शिमा

श्वेतसंघके सब सदस्य वैशाख पूर्णिमाके सिवाय आषाढ़ पूर्णिमाको भी संघसदस्यके भाव से एकत्रित होते हैं। इस प्रसंगपर वे भगवान मैत्रेयके आश्रममें जमा होते हैं। यह श्वाश्रम हिमालयकी दक्षिण ढाल पर है। इस प्रसंगपर कोई भूलोकके यात्री वहाँ जमा नहीं होते पर जिन्हें इस स्त्सवका हाल माल्म है और जो श्रपने वासना (या एस्ट्रल) शरीरसे वहाँ जा सकते हैं उन्हें कोई रोक्टोक नहीं होती। यह उत्सव आषाढ़ पूर्णिमाके दिन होता है। भगवान बुद्धने इस दिन अपना प्रथम धर्मोपदेश अपने पाँच शिष्यों को किया था जिसका नाम धर्मेचकप्रवर्तन सूत्र है।

इसमें भगवान बुद्धने अपने अनुभवसे प्राप्त मध्यममार्गका उपदेश किया है जिसमें तपस्याकी अतिशयता और संसारी जीवनकी उन्मत्तता दोनोंका त्याग होकर मध्यममार्ग का अनुसरण होता है, और धर्मानुकूल साधु जीवनका पालन हो सकता है। उसमें चार आर्थ सत्य और अष्टविध मार्गका उपदेश है।

भगवान बुद्धके प्रति भगवान मैत्रेयकी अति भक्ति होने के कारण इन्होंने आज्ञा दी है कि इस प्रथम उपदेशकी प्रत्येक वर्ष गाँठके दिन एकत्रित श्वेतसंघके सामने वही उपदेश फिर कहा जाय। यह कार्य पूर्ण चन्द्रके समय (पूर्णिमान्त) पर आरंभ होता है। उस सूत्रका पढ़ना तथा भगवान मैत्रेयकी निजकी उस सूत्रकी टीका प्रायः आध घंटे में खतम हो जाती है। भगवानके आश्रमके सामने बगीचेमें उँची समतछ जमीनपर संगममरके सिंहासनपर भगवान बिराजते हैं। संघके बड़े-बड़े अधिकारी उनके आस-पास बैठते हैं और वाकीके संघसदस्य बगीचेमें थोड़े नीचे पर बैठते हैं। पूर्ववत् इस प्रसंगपर भी मनोहर वार्तालाप होता है और गुरुदेव अपने शिष्यों और शिष्यत्वके इच्छुकोंको द्यामय बधाई और आशीवीद देते हैं।

उस प्रसंगकी सुन्दरता और आश्चर्यका तथा भगवानके उपदेशकी मधुरताका वर्णन नहीं हो सकता। इस प्रसंगपर भगवान पाली भाषामें उपदेश देते हैं पर प्रत्येक को वह अपनी मातृभाषा में सुनाई पड़ता है। उसमें चार आर्य सत्य और अष्टांगिक मध्यममार्गका वर्णन है। (१) जीवनका परिणाम दुःख है, (२) पुनर्भव था दुःखका कारण सब प्रकारकी तृष्णा, इच्छा या

वासना, (३) दु:खसे मोक्ष या दु:ख निरोध, (४) निरोधगामिनी प्रतिपदा या दु:खसे छुड़ानेवाला मार्ग, ये चार आर्थसत्य हैं। यह चौथा सत्य ही अष्टांगिक मार्ग कहाता है। उसके खाठ खंग ये हैं: (१) सम्यक् दृष्टि अर्थात् ज्ञानसे उत्पन्न विवेक जिसमें कार्य-कारणरूपी कर्मनियम भी शामिल है, (२) सम्यक् संकल्प या शुद्ध विचार, (३) सम्यक् वाचा या सत्य, प्रिय और हितकारी वाणी वोलना, (४) सम्यक्षमात, सोच सममकर अच्छा परोपकारी कार्य करना, (४) सम्यक्षमात, सोच सममकर अच्छा परोपकारी कार्य करना, (४) सम्यक्ष व्यायाम या मले कर्मोंका करना, (७) सम्यक्स्मृति वुराईको भूछ जाना खौर भली हितकारी वातोंको याद रखना, (८) सम्यक् समाधि या ध्यान खौर परसेवामें चित्तका लगाना।

इन आर्य सत्य और अष्टांग मार्ग पर बहुत विस्तारसे टीका हो सकती है। साधारण संसारी मनुष्यों के लिये मध्यममार्ग श्रष्ट है। सब व्यक्त जीवन दुःखमय है। एक तो आत्माको नीचे लोकोंमें उतरना और सीमित होना ही दुःख है, पर वह अनिवार्य है। संसारी मनुष्यको नाना प्रकारकी चिन्ताएँ और अङ्चने आ जाती हैं जिनसे उसे दुःख होता है। इनका कारण उसकी नीची वासना, नीची वस्तुओंकी इच्छा है। इन्हें जीतनेसे ही दुःखका त्याग हो सकता है। यदि मनुष्यको इच्छा न हो, सुख-दुःख, हार-जीत, लामालाभ समान हों, यदि उसका कार्य निष्काम हो, तो संसारके सब प्रयत्नों और अङ्चनोंमें उसकी शांति बनी रहेगी। उन वस्तुओंकी उसकी इच्छा दुर्वल और मंद रहेगी। मित्रके शरीरके प्रेमके कारण उसके वियोगसे हम दुःख न होगा। अति ऊँची वस्तुओं पर विचार स्थिर रखनेसे दुःखनी शांति होती है। बुरी वासनाओंका त्याग अच्छी

वासनाओं के स्थिर करनेसे होता है। श्रागे बढ़कर ये श्रच्छी वासनाएँ भी त्याग दी जाती हैं।

अष्टांगमार्ग : यह मार्ग कई नीचे और ऊँचे अर्थोंमें सममा जा सकता है। साधारण मनुष्य साधारण अर्थमें लेकर शांति प्राप्त कर सकता है और ऊँचा तत्वज्ञानी भी उसे अपनी योग्यता-नुसार समम कर उससे बहुत कुछ सीख सकता है।

- (१) सम्यक् दृष्टिके लिये जीवनकी प्रधान वातोंका ज्ञान चाहिये। ईश्वरकी हमारे विषयकी योजनाका भी ज्ञान चाहिये। स्वयं इन वातोंको न जान ले सकें तो धर्मोंमें जो इनके बारेमें कहा है उसे प्रहण करें। प्रत्येक धर्ममें प्रधान वातोंके विषयमें कुछ न कुछ ज्ञान रहता ही है। इनमेंसे एक प्रधान वात कार्य-कारण नियम है। मनुष्यको अपने कर्मीका फल अवश्य मिलता है। जैसा करेगा वैसा पायेगा। उसे यह भी समझ लेना चाहिये कि ईश्वर चाहता है कि मनुष्य उदार और उत्तम बन जाय। प्रकृतिके प्रधान नियमोंको उसे जानना चाहिये। अन्धविश्वास नहीं चाहिये। भगवान बुद्धने कहा है कि मनुष्यको तीन वातोंके विपयमें निश्चय हो जाना चाहिये-कि पवित्रता और शुद्ध जीवनके मार्गसे ही पूर्णता प्राप्त हो सकती है; उसे प्राप्त करनेके लिये वह वार-वार जन्म लेता है और धीरे-धीरे ऊँचा उठ जाता है; और यह भी कि ये सब कियाएँ एक अनंत न्याय नियमके अनुसार होती रहती हैं। संसारी मनुष्यको निदान इन तीन वातोंका विश्वास तो होना चाहिये; आगे वढ़कर तो उसे उनका निश्चित ज्ञान हो जायगा।
- (२) सम्यक् संकल्प या गुद्ध विचार : इसमें दो बातें आती हैं, एक तो यह कि हम अच्छी बातोंके विषयमें विचार करते रहें और बुरी बातोंके बाबत नहीं। हमारे मनमें ऊँचे और सुन्दर विचार बने रहें और हलके तुच्छ असार विचारोंको स्थान न

मिले। जो काम हम करते हैं उसे पूर्ण ध्यानसे करके तत्पश्चात् हमारे मनमें ऊँचे विचारोंका चिंतन हो। विचारिकया क्रमबद्ध हो, वेकाम या वेसिलसिलेके विचार न आने पावें। अशुद्ध या दूसरोंके प्रति बुरे विचार न आवें; विचार सत्य हों उनमें थोड़ी भी असत्यता न हो। दूसरेकी बुराईपर ध्यान देनेसे वह बुराई वहती है। उसके विषयमें भले विचार करनेसे भलाई उसमें बढ़ेंगी।

(३) सम्यक् वाणीमें जो सत्य, प्रिय और हितकारी हो वही

वोला जाय और इसके सिवाय और कुछ नहीं।

(४) सम्यक्षमातः कार्य ठीक प्रसंगपर श्रीर सोचकर किया जाय। वह निः त्वार्थ हो और उसमें दूसरों की भलाईका ध्यान रहे। हमारे विचार, वाणी श्रीर कर्म शक्तियाँ हैं जिनका प्रभाव दूसरोंपर पड़े विना नहीं रहता। इसिछये इनके विषयमें हमें बहुत सावधान रहना चाहिये। इनसे दूसरों की भछाई हो यह हमारे ध्यानमें रहे।

(४) सम्यगाजीवमें किसी प्राणीको कष्ट न पहुँचे। शराब वेचना, रोजगारमें वेईमानी करना या विश्वासघात करना, रिश्वत लेना, कसाई, मछुत्रा, वहेलिया, श्रादिके धन्धे, ये सब वातें

परम त्याज्य हैं।

(६) सम्यग्व्यायाममें हमारी शारीरिक श्रौर मानसिक शक्तियोंका सदुपयोग होना चाहिये। उनके उपयोगसे श्रधिकसे अधिक श्रच्छा फत निकले।

बाकीके स्पष्ट हैं।

जब बहुत कालके वाद दूसरे बुद्धका समय आयेगा तब वोधिसत्व भगवान मैत्रेय अंतिम जन्म लेकर उस पदको प्राप्त होंगे और गुरुदेव कुथुमि अठवीं मूल जातिके बोधिसत्व होंगे।

इति कृष्णापेणमस्तु । शुभं भूयात् ।

राय वहादुर श्रो पंड्या बैजनाथ द्वारा रचित पुस्तकें		
मनुष्य के कोष और उन ही शुद्धि ( Man's Bolies)	0	25
कर्म नियम (The Laws of Karma):	0	25
मरण और मरण पश्चात् की स्थिति		
(Life after Death):	0	20
अनुवादित पुस्तकें		
श्री गुरुदेव चरणेषु (At the feet of the Master)		
ले॰ जे॰ कृष्णमूर्ति	0	50
अदृश्य सहायक (Invisible Helpers):		
ले॰ सी॰ डब्ल्यू॰ लेडबीटर		50
थिऑसोफी परिचय (Text Book of Theosophy)	:	
लें सी॰ डब्ल्यू- लेंडबीटर	1	75
स्वर्गतोक (Devachanic Plane):		
ले॰ सी॰ डब्ल्यू लेडबीटर	0	50
चक्रकुंड जिनी और शास्त्रोक्त अनुभव (On the Basis		
of "Chakras") : ले॰ सी॰ डब्ल्य : लेडवीटर	0	38
भारत समाजीय नित्य-पूजा विधान		
( संस्कृत मंत्र तथा हिन्दी टीका )	0	50
ज्यान क ऋांक (The Stanzas of Dzyan):		
लें एचा पीर दलैवेटरकी	1	25
भावना योग (The Nature of Mysticism) :		
ले॰ सी॰ जिनगजराम	1	13
मानव कहां से, कैसे और कियर (On the Basis		
of Man: When, How and Whithan		-
ले॰ एनी वेसण्ट श्रीर सी॰ डव्ल्यू॰ लेडवीटर	1	25
Officerry .		
ंडियन वुकशॉप यिओसॉफिकल सोसायटी, वाराणसी-१।		
वाराण	ासी-	-81

all the moth ut ern scienal knowledgen Hindi, wice unfortunangeneral true appreciatte nto effect long that English, all stages and in all sectors with a view to creating a greater equality of educational opportunity." be made to discover and encourage talent "in various fields." The new scheme will also provide wider facilities "at improvement in the academic standards, every endeavour will bring it into more intilliage to lationship with the "life, needs Besides ensuring a continual and aspirations of the people." Laudable aims country is able to signacula Indian Airlines for its part should also not delay paying utilisation rate of the airline's already among the therefore all the more necessary the more tourism from abroad. An airline on domestic routes is quite essential for atto go ahead swiftly with tracting foreign tourists. highest in the expansion plans. Rect is Micient vailable tonne kilo e the operating reabort 118 faces, or what the reentically describes the other indiincrease since it the airline. For eased from Rs. the operating hes, the other name of the contract the cont anprovement in mprovement in husiastic

venience and comforts of its vices of the airline are not as passengers. The ancillary sergreater attention to the congood as they should be. provement. If this maintained in the for the same unit s certainly a mean rom Rs. 1.80 to

In a no press. d to belittle B-lish. Mrn-ber of Py-respective Anglo-lyte in Augras still nogel educative educatic given se able. The State Government is seems to be conscious of this be seems to be conscious of this fact and realises that a mere lidectaration of the goal is not be declaration of the goal is not be the same thing as reaching it. It knows that text-books and A White Paper, therefore, assures us that "a massive programme of the revision and improvement of text-books will be teachers of the highest stan-dard are indispensable for the success of its scheme. The Everyone of these aims is audable but not easily attaintrunk routes, but it is a rather are fairly punctual on the main ays in the handling of baggage and by its failure to stick rigid-The flights been damaged by irksome dey to its schedule.

nove in the right bee auriling u teachers of the unwitting to accept it. C011other cerned are aware of this blem. They are in a nonity The authorities different story on the

routes.

harges, It is a good passenger traffic in ine months of the ir has been 22 per

than in the corres-

ayments and other

nan compensate for

ope that the operatoril be large enough

there is every

who spe-

to our educational in-s will not be an easy ortion of able men and them." Today the pro-of teaching has fallen I days in our country Report, "is the provial system," says the development in the ement of any compreandard of English need for raising the Maharashtra recogheir subjects. It is to see that the er of the Governus to gain success to ent teachers ondery education. thite Paper says eat. "The fundamencompetent teachers is ional institutions in necessary to enable improvement ut they alone canno teachers and of the of education. adequate establishinstitutions from the in the on foreign spolicy and economic affairs as these are the two major spheres in which foreigners likely to seek light. We have women who can speak with authority variety of ways scope for bringing about better understanding and closer ties in o STUDENT COURTS with student problems is ill-concourts in the Madras colleges to deal THE Madras Education reducing the Principals disciplinary powers, and it is likely to hamper the usefulness of the scheme at the tutions. The Minister may not find the smooth functioning of the insticolleges are raised. Student councils in America, where problems of dis-cipline are discussed and remedies There is a case for consulting students when their legitimate gricconference he has convened found, show the usefulness of the scheme. But the proposed Madras plan would place a premium on stuvances relating to conditions in the teachers to obey the ukases of such a "court" will lead to the disruption a "court" will lead to the disruption. be found in young persons. To di-rect the Principals and other sense of responsibility not easily to easy to convince the Principals of the countries of Asia and far too long. There is ample "court" argues a maturity and foreigners are for consulting men and student lament powers to derogate from the Fundamental Rights. The Bil is now being debated by Farliamen Rights, all hold the view that i being allotted to it every alternate bridgy during the Private Members business. This procedure has dero-Constituent Assembly to give which will represent the amendment, however, is sponsored by a member of Opposition with the suggestion the Government will support gaied from a coherent debate and They had been directly sponsored by the Government. This Bill which will represent the 23rd amendments to our irksome. er of this amending Bill. rom adequate public attention seing focused on the crucial characnower as proposed in this amend-ing Bill. As I said, when speaking in the House on November 29, there of being among the most lawless of round it ions to the Government a gratuitous assault on the Constlof increasing lawlessness, the Govonslaught. So far there have been about 22 a piece-meal manner, two hours There are many crucial Crucial objections executive. As soon part of the Government Assembly of the Supreme ways are found in the present climate finds some decision Constitution Court row predilections.

I lay emphasis on the because the selection wrong persons has been the many banes of our course. major blowark of our demo made an object of ridicule and ly expect to be remuneat a scale commensurate their abilities and resign Adviser to the Governme Bombay, said on the s exactly 20 years ago, should," deciated this ties. This means that Ho in charge of selection an cruitment should them be enlightened and by dom. In addition, they & mosphere of intellectua remark by recalling whe be enlightened and au besides being free from a reform of Continued from Col Education Saiyidain, Educa (To be concluded) o

the new dispensation